आचार्यश्री विमर्शसागरजी महाराजकृत
जीवन है पानी की बूँद
महाकाव्य पर आयोजित
राष्ट्रिय विद्वत्संगोष्ठी के अवसर पर प्रकाशित

जीवन-विमर्श - एक अनुचिंतन

निदेशक

संपादक
डॉ. आशीष जैन आचार्य, शाहगढ

प्रकाशक

अनुक्रमणिका

प. पू. राष्ट्रयोगी श्रमणाचार्यश्री १०८ विमर्शसागरजी महाराज
– मुनिश्री

आचार्यश्री विमर्शसागरजी महाराज का हिन्दी काव्य परम्परा में अवदान 'जीवन है पानी की बूँद' के सन्दर्भ में
– डॉ. आशीष जैन आचार्य, शाहगढ़

आचार्यश्री विमर्शसागरजी महाराज द्वारा रचित में अवदान 'जीवन है पानी की बूँद' में प्रतिपादित मानव के कर्त्तव्य
– पं. राजेश जैन शास्त्री, ललितपुर

'जीवन है पानी की बूँद' के सन्दर्भ में अहिंसा धर्म की प्रासंगिकता
– पं. मुकेश जैन शास्त्री, ललितपुर

आदर्श जीवन का पथ
– पं. मनोज जैन शास्त्री, नरसिंहगढ़

आचार्यश्री विमर्शसागरजी एवं उनकी साहित्य साधना
– आशीष जैन शास्त्री, बम्हौरी

आचार्यश्री विमर्शसागर कृत 'जीवन है पानी की बूँद' में नैतिक शिक्षा
– सुनील सुधाकर शास्त्री द्रोणगिरि

आचार्यश्री विमर्शसागर कृत 'जीवन है पानी की बूँद' में अध्यात्म चिंतन की उपादेयता
– श्रीमती मालती जैन बडामलहरा

आचार्यश्री विमर्शसागर कृत 'जीवन है पानी की बूँद' में निहित पुण्य-पाप पदार्थों का विवेचन
– मा. पं. शिखचन्द्र जैन एवं
पं. चन्द्रप्रभात जैन बड़ामलहरा

प. पू. राष्ट्रयोगी श्रमणाचार्यश्री १०८ विमर्शसागरजी महाराज

- मुनिश्री

लोकोद्योतक संत - श्रमण संस्कृति का अविरल प्रवाह अनादि काल से भगवान महावीर स्वामी तक और भगवान महावीर स्वामी से लेकर वर्तमान तक निरंतर प्रवाहमान है। आरातीय आचार्यों के पावन तटों से होती हुई यह श्रमणगंगा 'जिन श्रुत को पल्लवित और पुष्पित करती आई है। इस श्रमण गंगा में स्नान कर अनेकानेक भव्य जीव स्वयं तीर्थ बन गये और अनेकानेक श्रमणसपूत' वर्तमान में स्वयं की और दूसरों की आत्मा को तीर्थ बनाने का पुरुषार्थ कर रहे हैं। पंचम काल के अध्यात्म पुत्र आचार्य भगवन् कुंदकुंद स्वामी का 'अध्यात्म अमृत' या फिर आचार्य पुष्पदंत और भूतबली स्वामी द्वारा लिपिबद्ध सिद्धान्त ग्रन्थों की गौरवमयी विरामत हो, जितना भी जिन श्रुत का अंश वर्तमान में सुरक्षित है, असका सारा श्रेय हमारे पूर्ववर्ती आचार्यों की महान परम्परा में २०वीं सदी के महान आचार्यश्री आदिसागर अंकलीकर की विशाल परम्परा में एक ज्येष्ठ और श्रेष्ठ आचार्य है, सूरिगच्छाचार्य श्री १०८ विरागसागरजी महाराज उनके श्रेष्ठ शिष्यों की अनुपम श्रंखला में श्रेष्ठ साधक, अध्यात्म के संवाहक, 'निस्पृह योगी' परम पूज्य श्रमणाचार्यश्री विमर्शसागरजी महाराज, शिष्यों की सुंदर परिभाषा है। पूज्यश्री ने अल्पवय में ही कलिकाल को सबसे बड़ा चमत्कार कर दिखाया जिसका नाम है 'दिगम्बरत्व' हमारे आचार्य कहते हैं -

कलौ काले चले चित्ते देह चान्नादिकीटके।
एतच्चित्वमत्कारः जिनरूपधरा नराः।।

अर्थात् इस कलिकाल में चित्त चलायमान है, और देह अन्न का

कीडा बना हुआ है, ऐसे में गर कोई जिनरूप की नर धारण करे तो यह का चमत्कार ही जानना चाहिये। ऐसे चैतन्य के चमत्कार से भोग विलासता में डूबे जगत की विस्मय पैदा करने वाले, निर्ग्रन्थता को नये आयाम देने वाले, बुंदेली धरा के सपूत परम पूज्यनीय श्रमणाचार्य श्रीविमर्शसागर जी महाराज की जीवन याच का प्रारंभ बुंदेलखण्ड की एक छोटे से कस्बे जतारा से ठीक उसी तरह हुआ जिस प्रकार गंगा का जन्म हिमालय से होता है। गंगा का आविर्भाव जब हिमालय से होता है तो अतिलघुरूप में होता है किन्तु बाद में वह छोटी-सी जलधारा एक विराट् नदी का आधार ले लिया करती है। ठीक उसी प्रकार पूज्य श्री की जीवनयात्रा एक साधारण से परिवार से शुरू हुई। किसी को पता नहीं था कि सनतकुमार जी और माँ भगवाती की कुक्षी से जन्मा यह बालक एक दिन जैनदर्शन मर्मज्ञ विद्वान् और श्रेष्ठ साधुवर्ग से समादृत, जिनलिंग की साधना का श्रेष्ठ साधक बनेगा। श्रमण जगत के निर्मल आकाश में ध्रुव नक्षत्र की भाँति-दैदीप्यमान पूज्यवर का अपराजेय व्यक्तित्व शब्दों के माध्यम से बाँधने योग्य नहीं है। अध्यात्म की तरफ मोड़ना निश्चित रूप से सबको चकित करने वाला था। चैतन्य के इस अनुपमेय चमत्कार की मंगलमयी अभिव्यक्ति को साकार रूप देने वाले अध्यात्म चेतना के तत्त्वदर्शी सूत्रधार परम पूज्य श्रमणाचार्यश्री विमर्शसागरजी महाराज ने ऊर्ध्वगामी शक्तियों को ओजस्विता प्रदान करने वाले संयमपथ को चुनकर श्रमण-अस्मिता को नूतन आध्यात्मिक ऊर्जा प्रदान की है।

इस अनासक्त योगी का १५ नवम्बर १९७३ को अवनि पर आविर्भाव जगति के लिये नूतन उपहार से काम नहीं था। १९९५ में ब्रह्मचर्य की तेजस्विता के साथ जिनशासन की अप्रतिम साधना का ध्वजारोहण का, १९९६ में ऐलक दीक्षा तथा १९८८ में श्रमणप्रवज्या के स्वरूप का अभ्यर्चन निश्चित रूप से अद्वितीय और यशस्वी कदम था। आत्मान्वेषी साधक का मात्र चार वर्ष में ब्रह्मचर्य से श्रमणत्व तक का सफर यह स्पष्ट करता है कि इस सत्यान्वेषी साधक का साधना के प्रति अप्रतिम अनुराग कितना गहन था। और परम पूज्य युग प्रमुख श्रमणाचार्य

जगत् गुरू सूरिगच्छाचार्य श्री विरागसागरजी महाराज द्वारा मात्र सात् वर्ष बाद ही सद्गुणों से ऊर्जस्वित श्रमण श्रीविमर्शसागरजी महाराज को आचार्य पद की उद्घोषणा निश्चित रूप से उनकी अप्रतिम योग्यता का शुरू के अपराजेय आशीष द्वारा मंगल अभिषेक ही था।

तेजस्वी बचपन - वाल्यावस्था से ही अपने व्यक्तित्व की अपूर्व तेजस्विता से हर व्यक्ति को प्रभावित करने का तिलिस्म उनके पास था। आत्मा की स्वच्छ और पवित्र अवनि पर माता-पिता के सुसंस्कारों से अभिप्रेरित होकर धर्म का सुखद अंकुरण अल्पवय में ही होने लगा था जो वर्तमान में जिनशासन की आध्यात्मिक साधना का वटवृक्ष बनकर अनेक भव्य जीवों को अहर्निश धर्म का शाश्वत शीतलता प्रदान कर रहा है। नन्हीं देह में भी विराट और असमी व्यक्तित्व की छवि दिखाई देती थी, अब दीन-दु:खी असहाय जीवों के प्रति करुणाशील भाव प्रवणता से उनके हृदय का एक-एक प्रदेश द्रवित हो उठता था। कला और विज्ञान की जैसी अच्छी प्रखरता का समन्वय इस चरित्रनायक के जीवन में दृष्टिगोचर होता है, वैसा किसी सामान्य व्यक्ति में देखने को नहीं मिलता। अपने से बड़ों के प्रति विनीत बचपपन उसका अनुकरणीय है, सत्य है, प्रशंसनीय है। श्रेष्ठ कुलीन व्यक्तियों में विनम्रता स्वभाविक रूप से प्राप्त होती है। क्योंकि कहा भी है -

नमन्ति सफलावृक्षा:, नमन्ति कुलजा: नरा:।
शुष्ककाष्ठाश्च, मूर्खाश्च न नमन्ति कदाचन:।।

अर्थात् फलयुक्त वृक्ष और कुलीन मनुष्य नम्र होते हैं, परंतु सूखे काष्ठ और मूर्ख कभी नम्र नहीं होते। अपनी विनयशीलता के कारण ही वो सभी गुरूओं की नजरों में प्रिय शिष्य के रूप में देखे जाते थे।

यशस्वी श्रमण - अपराजेय व्यक्तित्व के धनी परम पूज्य श्रमणाचार्य श्रीविमर्शसागरजी महाराज श्रमणजगत में अपनी सम्प्रदायातीत जनप्रिय साधना के कारण सबसे जुदा और श्रेष्ठ संत है। पूज्य श्री के बहुआयामी यशस्वी व्यक्तित्व का जब हम कलम से कागज पर समाकलन करने के लिये उद्धत होते हैं, तब हमें अपनी प्रज्ञा का बौनायन ही परिलक्षित होता

नजर आता है। पूज्य आचार्यश्री का करिश्माई सामीप्य आत्मा की बंजर भूं पर वैराग्य के सुखद अंकुर उत्पन्न करने वाला होता है। इन पूज्यपाद के दमकते हुये ऊर्जस्वी मुखमण्डल पर फैली समता भरी मुस्कान के भावनात्मक संप्रेषण से जन मानस अपने दु:खदर्द को भूलकर अपने अंदर सुख, शान्ति और समृद्धि की अजस्र ऊर्जा की सुखद अनुभूति करने लगता है। 'वात्सल्योन्मुखी' में संत किसी एक को नहीं प्रत्येक को अपूर्व समभाव के धरातल पर तीर्थेश महावीर जैसा अकृत्रिम वात्सल्य लुटाने वाले दिगम्बर आम्नाय के लोकमान्य आदर्श संत है वंदनीय, पूज्यवर के विविधता पूर्ण व्यक्तित्व की अनुमिग्न साधना, वर्तमान समाज में फैले सामाजिक विघ्नों को दूर कर एकता और अखण्डता का दिव्य उद्घोष करती है तभी तो इस यशस्वी श्रमण का यश चारों ओर सुविख्यात है।

ओजस्वी वाग्पति - इस सन्मार्ग दर्शी, मुक्त साधक के मुक्त कंठ से जब ऊर्जस्वी और ओजस्वी वाग्मिता प्रस्फुटित होती है तो जिनवाणी के उन ललित स्वरों में तीर्थेश महावीर जैसा अविरल सम्मोहन प्राणी मान की अपनी और सहसा ही आकृष्ट करता है पारदर्शी व्यक्तित्व के धनी ज्ञानशील और सृजनशील इस अनोखे संत द्वारा जब जैन वाग्मय के गूढ विषयों की अपनी चिर परिचित ओजस्वी शैली में सरल और सार्वजनीन व्याख्या होती है तो श्रोता चित्राम से स्थिरता को प्राप्त हो जाते हैं। 'सर्ववन्द्य प्रदीप्त साधना से आलोकित आप भी की निर्दोष वक्तृत्व शैली अन्य प्रवचनकारों को भी अनुगमन करने जैसी है। आपका आगमानुगामी शब्दाकर्षण' आपकी श्रेष्ठ वक्ता के रूप में प्रतिस्थापित करता है। आचार्य आत्मानुशासन ग्रन्थ में श्रेष्ठ वक्ता का लक्षण बताते हुये लिखते हैं -

प्राज्ञः प्राप्त समस्त शास्त्रहृदयः प्रव्यक्तलोकस्थितिः।
प्रास्ताशः प्रतिमापरः प्रशमवान् प्रागेव दृष्ठोत्तरः।।
प्रायः प्रश्न सहः प्रभुः परमनोहारी परा निन्दया।
ब्रूयाद् धर्मकथां गणी गुणनिधिः प्रस्पष्टमिष्टाक्षरः।। २७।।

अर्थात् जो बुद्धिमान् हो, समस्त शास्त्रों का ज्ञाता हो, लोकरीति

का जानकार हो, आशा से रहित हो, प्रतिभा सम्पन्न हो, प्रशमभाव से सहित हो, उठने वाले प्रश्नों का उत्तर जिसने पहले ही देख लिया हो, प्रायः प्रश्नों को सहन करने वाला हो, दूसरों की निंदा के बिना दूसरों के मन को हरण करने वाला हो, गुणों का भण्डार हो, स्पष्ट और मिष्ट अक्षर वाला हो ऐसा गणी या आचार्य ही धर्म कथा को कहे। विराज वाग्पति राष्ट्रयोगी, आचार्यप्रवर श्रीविमर्शसागरजी महाराज के श्रीमुख से जब हम सत्तवधर्मी वाग्मिता का रसपान करते हैं तो उक्त कारिका प्राणवंत और जीवंत हो उठती है। इस उदीयमान संत द्वारा जब जीवन है पानी की बूँद की अक्षराञ्जलि से प्रवचन के आगाज में भक्तों का अभिषेक किया जाता है तो करध्वनि और जयनादों से देशना स्थल गुंजायमान हो उठता है। चको ज्यों चाँद जो एक टक निहारता है, उसी भाँति प्रवचन स्थल पर सैकड़ों आस्थाओं का केन्द्र गुरुवर का प्रशस्त मुखमण्डल होता है, और वो धर्म पिपासु श्रीमुख से धर्मामृत का पान कर सुखद अहसासों की पावन पुण्य सम्पदा का सहज ही संचय कर लेते हैं, आचार्यश्री और भी कहते हैं –

श्रीतृन् मूलयति ब्रुवन् ....

अर्थात् जो प्रवचन करता हुआ अपने प्रभाव से श्रोताओं जो चुक कर देता है, जो उनके मन को अत्यंत स्थिर कर देता है। जो स्वयं आँसुओं से रहित होकर भी दूसरों के आँसु उत्पन्न कर देता है, जो दूसरों की दृष्टि का एक नाम आश्रय हो रहा है। जिसने जंघा आदि अंगों का हिलाना छोड़ दिया है, जो अपने वचनों से सत्पुरुषों के मस्तक को नित्य चंचल कर देता है। जिसके वचन सुनकर श्रोता अमृतपान जैसा आनन्द मानते हैं वह उत्तम वक्ता है।

धन्य है ऐसे गुरुवर की अनुपमेय, असाधारण और शुभ, मंगल वाणी, जो उनको अंतरमुखी साधना की असीम गहराईयों से निःसृत होती है तभी तो इस सम्प्रदायातीत सह उसी सभा में हर जाति वर्ग के लोग, जाति और धर्म को विकल्पों से दूर भगवान जिनेन्द्र की वाणी का रसपान करते हैं।

जब यह तेजस्वी संत अपनी निर्भीक और मार्मिक शब्द शैली में जिनसूत्रों की गर्जना करता है तो शैथिल्य की ओर बढ़ते श्रावक और संतों को कदम सिर्फ थमते ही नहीं, अपितु समीचीन मार्ग की ओर मुड़ जाते हैं। आपकी नि:शंक शैली को सुनकर विद्वत् परिषद् के अध्यक्ष डॉ. शीतलप्रसादजी ने कहा कि महाराजश्री जब आपके प्रवचन सुनते हैं तो हम विद्वानों का सीना चौड़ा हो जाता है, हमें गर्भ होता है कि आज वर्तमान में भी आचार्य समन्तभद्र स्वामी जैसे निर्भीक साधक है जो बिना लोग लपेट के जिनेन्द्र वाणी का उद्घोष करते हैं।

४. अनुशासन का महारूप - आत्मानुशासन, शुद्ध चिद्रूप चिंतन के प्रस्तोाता 'यतीश्वर' परम अर्चनीय श्रमणाचार्य श्रीविमर्शसागरजी महाराज के जीवन वृत्त पर जब हम अनुशासन की रेखाओं को निहारते हैं तो एक ओर हमें वीरशासन की असीम समृद्धि दिखाई देती है तो दूजी और 'विरागशासन' का विराट रूप नजरों में लहराता है। जो खुद अनुशासन के दायरे में रहते हैं और अपने संघस्थ साधकों को अनुशासन का पाठ पढ़ाते हैं। उनके संघ संचालन के अनुपम तरीके में उनकी आत्मानुशासन प्रिय परिणति का महारूप स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। पूज्यवर का प्रभावी नायकत्व उन्हें अन्य संतों से अलग श्रेणी में लाकर खड़ा करता है। शिष्य उनके श्री मुख से कर्त्तव्य पालन की शिक्षा रूप चैतन्य रसायन को पाकर अपने अंदर कर्त्तव्य पालन की असीम ऊर्जा का संचार पतो हैं। शैथिल्य को दूर करने वाले गुरु के उपदेश का एक-एक शब्द कर्त्तव्यों के पालन मे जागरण का नव संदेश देता है, पुण्यात्मा शिष्यों को कहते हैं -

श्री सर्वज्ञपदार्चनं गुणिजने प्रीतिगुरौ नम्रता।
मैंत्री बन्धुषु दुःखितेषु च दया सिद्धान्ततत्त्वश्रुति।
पात्रेदान विधिः कषाय विजयः साधर्म्यकेष्वद्भुतं।
वात्सल्यं सततं परोपकरणं कार्यं भवद्भिः सदा।।

अर्थात् श्री सर्वज्ञ भगवान के चरणों की सेवा, गुणीजनों से प्रीति, गुरु में नम्रता, बन्धुजनों में मित्रता, दु:खीजनों में दया, सिद्धान्त के रहस्य को सुनना, पात्र में दान देना, कषायों को जीतना, साधर्मी भाईयों

में आश्चर्यजनक एवं अकृत्रिम वात्सल्य धारण करना। निरंतर परोपकार करना ये सब आपको सदा करना चाहिये। गुरुवर का गुरु–गुणोपासित व्यक्तित्व सतत् हमें गुरु के अनुशासन में सम्बद्ध होकर चलने को अभिप्रेरित करता है। तभी इन 'सत्य प्रतिज्ञ' श्रेष्ठाचार्य की 'गुणकीर्ति' श्रमण जगत में चतुर्दिक् वर्द्धमान है। उनकी हर चर्या में 'विरागानुशासन' की यशोगाथा गुँजायमान होती है। तब मैं कहात हूँ कि मेरे गुरुवर एक प्रभावी और महत् अनुशासित गणी है।

कृति में झलकता व्यक्तित्व का ऐश्वर्य – सर्वोदयस्ति महाव्रतिन् का जैसा अतुलनीय ऐश्वर्य शाली व्यक्तित्व है, वैसा ही इस कलम के जादूगर का प्रभावी और ऐश्वर्य कृतित्व भी है। जैसा उनका व्यक्तित्व उपास्रू है वैसा उनका कृतित्व भी स्तुत्य है।

विमर्शोदयी प्राकृत टीका आत्मोदयी हिन्दी टीका – श्रुतोपासक राष्ट्रयोगी, श्रेष्ठाचार्य श्री विमर्शसागरजी महाराज एक महान चिन्तक, उच्च कोटि के विचारक और वाग्वादिनि के असीमाकाश में अपनी सुविमल प्रज्ञा से निद्वन्द्व विचरण करने वाले अग्रगामी, आध्यात्मिक, आचार्य श्री अमितगति स्वामी के लगभग १००० वर्ष प्राचीन, अध्यात्म के अनूठे ग्रन्थ – योगसार प्राभृत पर प्राकृत भाषा में विमर्शोदयी नाम की वृहद् प्राकृत टीका एवं आत्मोदयी नामक हिन्दी टीका का प्रणयन कर जहाँ एक ओर जैन वाङ्मय को सशक्त किया है। वहीं दूसरी ओर साहित्य सभ्यता को अभिनव उपध्य दिया है, जो अपने आप में अद्वितीय है। और आम्नाय के स्वच्छ पन्नों पर स्वर्णाक्षरांकित करने योग्य भी।

जीवन है पानी की बूँद महाकाव्य – अंतरमुखी शुभांग निर्ग्रन्थराज के अपरिमित व्यक्तित्व का एक अहम् पक्ष है, उनकी अप्रतिम काव्य साधना। उनके कवि हृदय से नि:सृत एक एक शब्द जीवन्त कविता का प्रणयन करता है। मध्यप्रदेश के भिण्ड नगर में गुरुचरणों में वर्षावास १९९७ के पावन पलों में कवि मन: पूजय ऐलकश्री विमर्शसागरजी के हृदय पटली पर एक ऐसे महाकाव्य ने जन्म लिया, जसे मैं जैन जगत का सबसे ज्यादा लोकप्रिय काव्य कहूँ तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है। वर्तमान

में चाहे पंचकल्याणक महोत्सव हो या फिर विधान आदि आयोजन, ऐसा कोई भी आयोजन नहीं है, जहाँ इस दिगम्बर देव की यह अनुपम कृति –

आचार्यश्री विमर्शसागरजी महाराज का हिन्दी काव्य परम्परा में अवदान 'जीवन है पानी की बूँद' के सन्दर्भ में

- डॉ. आशीष जैन आचार्य, शाहगढ़

शरण प्रभु की मिल जाये, समझो किस्मत खुल जाये,
रात अमावस ढल जाये रे-२
जाने कब क्या हो जाये, साँसों का धन खो जाये,
प्रभुवर की भक्ति, हो-हो-२ वरदान कहाये रे-ऽऽ

आचार्यश्री विमर्शसागरजी महाराज के द्वारा एक महत्त्वपूर्ण काव्य की रचना की गई, जिसका नाम है जीवन है पानी की बूँद। यह काव्य हिन्दी काव्य जगत का एक अनुपम उदाहरण है, क्योंकि इस काव्य में जहाँ एक ओर श्रव्यकाव्य के पुट विद्यमान है, वही इसमें दृश्यकाव्य के भी पुट विद्यमान है। काव्य क्या है? जिसमें 'कहानी' या 'मनोभाव' को कलात्मक रूप से किसी भाषा के द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है, वह काव्य, कविता या पद्य ही साहित्य की विधा है। भारत में कविता का इतिहास एवं दर्शन 'भरतमुनि' से माना जाता है। कविता का शाब्दिक अर्थ है - काव्यात्मक रचना या कवि की कृति, जो छन्दों की श्रृंखला में विधिवत् बाँधी जाती है।

काव्य वह रचना है, जिसमें किसी रस या मनोवेग से पूर्ण हो। अर्थात् वह कला जिसमें किसी चुने हुये शब्दों के द्वारा कल्पना और मनोवेगों का प्रभाव डाला जाता है। इसके सन्दर्भ में पं. जगन्नाथ रसगंगाधर में कहते हैं -

रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्।

'रमणीय' अर्थ के प्रतिपादक शब्द को 'काव्य' कहते है।
साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ कहते है -

रसात्मकं वाक्यं काव्यम्।

रसात्मक वाक्य ही काव्य है।

आचार्यश्री विमर्शसागरजी महाराज का काव्य रस से भी परिपूर्ण है और रमणीय अर्थ को उत्पन्न करने वाला भी है। निम्न उदाहरण के माध्यम से समझ सकते हैं कि किस प्रकार से उनके काव्य में रमणीयता और रस समाहित है -

करुणा रस छलकाओ तुम, दिल से दया बहाओ तुम,
सबमें प्रीति जगाओ तुम-2
घृणा नहीं उपजाओ तुम, वात्सल्य प्रगटाओ तुम,
दुनियाँ में दुश्मन, हो-हो-2 फिर नजर न आये रे-ऽऽ

रमणीयार्थ - मानव हृदय करुणा से परिपूर्ण होना चाहिये, दीन-दु:खी, असहाय जन को देखकर उनके प्रति करूणा के भाव उत्पन्न होना चाहिये, एवं निरंतर उनके प्रति दयाभाव प्रकट करना चाहिये। चाहे मित्र हो या शत्रु सभी केप्रति प्रेम, वात्सल्य का भाव होना चाहिये। घृणा को कभी भी जीवन में प्रवेश नहीं करने देना चाहिये। यदि ऐसा हो गया, तो निश्चित ही संसार में आपको कोई भी शत्रु नहीं होगा। सब मित्र ही मित्र नजर आयेंगे।

उक्त पंक्तियाँ इतना सुन्दर अर्थ मानवीय प्रेम, वात्सल्य, दया, करूणा जैसे उत्कृष्ट भावों को प्रकट करता है, काव्यगत विशेषता को प्रस्फुटित करता है। आचार्यश्री की इसी विशेषता ने उनके इस काव्य को जन-जन में लोकप्रिय और कर्णप्रिय बनाया है। हिन्दी काव्य परम्परा में भी यह एक महत्त्वपूर्ण काव्य सिद्ध हुआ है।

रसात्मकता - नाट्यशास्त्र में आचार्य भरतमुनि कहते है -

विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः।

अर्थात् जहाँ विभाव, अनुभाव, व्यभिचारी भाव के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। साहित्यदर्पण में कहा है - हृदय का स्थायी भाव, जब विभाव, अनुभाव और संचारी भाव का सयोग प्राप्त कर लेता है तो रस रूप में निष्पन्न हो जाता है।

स्थायीभाव - रस से जिस भाव की अनुभूति होती है वह स्थायी भाव

है। उक्त पंक्तियों में निश्चित ही करुणा की, दया की, घृणा त्यागने की, प्रेम की और वात्यल्य की अनुभूति हो रही है। जो इन पंक्तियों के स्थायीभाव है।

करूणा रस छलकाओ तुम, दिल में दया बहाओ तुम।

विभाव - इसका अर्थ है कारण। ये स्थायी भावों का विभावन करते हैं, उन्हें आस्वादन योग्य बनाते हैं। जैसे - तब तक घृणा का त्याग नहीं होगा, तब तक दया उत्पन्न नहीं होगी, जब तक क्रोध का त्याग नहीं होगा तब तक प्रेम नहीं आयेगा। कहा भी उक्त पंक्तियों में -

घृणा नहीं उपजाओ तुम, वात्सल्य प्रगटाओ तुम।

अनुभाव - जो भावों का अनुगमन करे वह अनुभाव है। उक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि हृदय में करुणा और दया के भाव होंगे तो शत्रुता नष्ट हो जायेगी, यही उसका अनुगमन भाव है। जैसा कि कहा है-

दुनियाँ में दुश्मन, हो-हो-2 फिर नजर न आये रे-ऽऽ

संचारी भाव या व्यभिचारी भाव - संचारी का अर्थ होता है - साथ-साथ चलना अर्थात् संचरणशील होना, संचारीभाव स्थायी भावों के साथ संचरित होते हैं। जैसे - उक्त काव्य की पंक्तियों में करूण रस के साथ-साथ शांत रस भी साथ-साथ चलता है।

काव्य के भेद

स्वरूप की दृष्टि से काव्य के दो भेद है -

१. श्रव्यकाव्य और २. दृश्यकाव्य।

१. श्रव्यकाव्य - जिस काव्य का रसास्वादन सुनकर या स्वयं पढकर किया जाता है। उसे श्रव्यकाव्य कहते हैं। आचार्यश्री विमर्शसागरजी महाराज द्वारा रचित काव्य श्रव्यकाव्य का जीवन्त उदाहरण है -

जब-जब दौलत आती है, बुद्धि को खा जाती है,
अहंकार को लाती है - २
सबका मन बहलाती है, पापों तक ले जाती है,
कोई विरला ही, हो-हो-२ धन से पुण्य कमाये रे-ऽऽ

उक्त काव्य की पंक्तियाँ जितना पढ़ने में आनन्द देती है, उतनी

ही सुनने में। जब इनका श्रवण होता है, तब स्वयमेव आनन्द प्रस्फुटित होता है।

इस काव्य को पढ़ने का उपरान्त सुस्पष्ट हो जाता है कि यह श्रव्यकाव्य का भेदों के अन्तर्गत आने वाले मुक्तक काव्य का एक श्रेष्ठ रूप है। (विभिन्न प्रकार की विषय-वस्तु का समायोजन एक ही छंद और पद में स्वतंत्र रूप से भाव को प्रकट करता है वह मुक्तक काव्य है।) इस काव्य में करूणा, दया, धर्म, जीवन के प्रति सकारात्मक विचार, सोच, वैराग्य, भक्ति और आनंद आदि की धारा नि:सृत है।

२. दृश्यकाव्य - जिस काव्य की आनंदानुभूति अभिनय को देखकर एवं पात्रों से कथनोपकथन को सुनकर होती है, वह दृश्यकाव्य है।

यदि आचार्यश्री के इस काव्य कुछ अंशों को नाट्यरूपान्तरण किया जाये तो निश्चित रूप से दृश्यकाव्य का एक महत्त्वपूर्ण अंग सिद्ध होगा। जिसे हम एक छोटे से उदाहरण से समझ सकते हैं -

जीवन है पानी की बूँद, कब मिट जाये रे - ऽऽ
होनी-अनहोनी, हो-हो-२, कब क्या घट जाये रे - ऽऽ
साथ निभायेगा बेटा, सोच रहा लेटा-लेटा,
हाय बुढापा आयेगा, पास न आयेगा बेटा,
ख्वाबों में तू क्यों?, हो-हो-२ आनंद मनाये रे - ऽऽ
अर्द्धमृतक समबूढापन, झुकी कमर सिकुड़न-सिकुड़न,
गोदी में पोता-पोती, खोज रहा बचपन यौवन,
बीते जीवन के, हो-हो-२ तू गीत सुनाये रे - ऽऽ
हाथों में लकडी थामी, चाल हो गई मस्तानी,
यम के घर खुद जाने की, कैसे मन में हो ठानी,
वेटा बहु सोचे, हो-हो-२, डोकरो कब मर जाये रे - ऽऽ
चारपाई पर लेटा है, पास न बेटी-बेटा है,
चिल्लाता है पानी दो, कोई न पानी देता है,
भूखा प्यासा ही, हो-हो-२ इस दिन मर जाये रे - ऽऽ
जीवन बीता अरघट में, पुण्य-पाप की करवट में,

चढ़कर अर्थी पर जाये, अन्त समय भी मरघट में,
तेरा ही बेटा, हो-हो-२, तेरा कफन सजाये रे - ऽऽ
सिर पर जिसे बिठाया है, गोदी में भी सुलाया है,
लाड़ प्यार से पाला है, सुख की नींद सुलाया है,
तेरा ही बेटा, हो-हो-२ तुझे आग लगाये रे - ऽऽ
जिसके लिये कमाता है, जीवन साथी बताता है,
जिसकी चिन्त कर करके, अपना चैन गंवाता है,
देहरी से बाहर, हो-हो-२ कोई साथ न जाये रे - ऽऽ
जीवन है पानी की बूँद, कब मिट जाये रे - ऽऽ
होनी-अनहोनी, हो-हो-२, कब क्या घट जाये रे - ऽऽ

उक्त पंक्तियों से सुस्पष्ट हो जाता है कि संसार दशा का अद्‌भुत मार्मिक चित्रण अन्यत्र दुर्लभ है।

काव्य हेतु - काव्य की सृजना के हेतुओं के संबंध में आचार्य भामह ने कहा है -

गुरुपदेशादध्येतुं शास्त्रं जडधियोऽप्यलम्।
काव्यतु जायते जातुक कस्यचित् प्रतिभावतः।।

अर्थात् मूर्ख भी काव्यशास्त्र को गुरू से पढ़ सकता है, किन्तु इसका प्रादुर्भाव तो किसी प्रतिभाशाली के हृदय से ही होता है। आचार्य मम्मट ने भी इसी बात को कहा है -

शक्तिर्निपुणता लोकशास्त्रकाव्याद्यवेक्षणात्।
काव्यज्ञशिक्षयाऽभ्यास इति हेतुस्तदुद्‌भवे।।

शक्ति, प्रतिभा, लोककाव्यशास्त्र आदि का ज्ञान तथा काव्यमर्मज्ञों से प्राप्त शिक्षा का अभ्यास- तीन तत्त्व काव्यरचना के हेतु है।

शक्ति - अपनी ऊर्जा को संग्रहित कर उसे सकारात्मक कार्यो के प्रति व्यय करना, शक्ति का सही उपयोग है। शक्ति का संचयन संयम के आधार से होता है। आचार्यश्री विमर्शसागरजी महाराज संयम के प्रतिरूप है। अद्‌भुत दिगम्बरत्व की साधना, साहस, एकाहार, पैदल गमन और केशलुंचन आदि जैसी उत्कृष्ट साधना ने शक्ति संचयन आपमें कूट-कूट

कर भर दिया है। एक उदाहरण आचार्यश्री के काव्यगत विशेषता को उद्घाटित करता हुआ और शक्ति संचयन के अद्भुत उदाहरण–

संयम अमृत प्याला है, किन्तु असंयम हाला है।
संयम विन मानव जीवन, मकड़ी का जैसा जाला है।।
संयम से जीवन, हो-हो-२ में आनन्द छाये रे-ऽऽ

प्रतिभा – जिसके लिये एक ही विषय पर विभिन्न कवियों द्वारा किया गया काव्यसृजन भिन्न हो जाता है, वह प्रतिभा है। अहि%छत्र भगवान पार्श्वनाथ की पूजन की पंक्तियों में स्पष्ट रूप से आता है –

यह बैर महा दुःखदायी है, यह बैर न बैर मिटाता है,
यह बैर निरन्तर प्राणी को, भवसागर में भटकाता है।।

इसी भाव को प्रकट करती हुयी आचार्यश्री के काव्य की विशेष प्रतिभा परिलक्षित होती है –

बैर न बैर मिटाता है, भव-भव में भटकाता है,
दुःख की फसल उगाता है-२
क्षमाभाव अपनाओगे, पारस सम बन जाओगे,
पारस बनकर ही, हो-हो-२ मुक्ति को पाये रे-ऽऽ

शास्त्रज्ञान – आचार्यश्री १०८ विरागसागरजी महाराज से दीक्षित आपने गुरू के समीप रहकर शास्त्रों का अध्ययन, मनन और चिंतन किया। गुरू के आशीर्वाद से और आपके स्वयं के परिश्रम से आप शास्त्रज्ञान में आपकी अद्भुत प्रतिभा परिलक्षित है। क्योंकि शास्त्रज्ञान बिन काव्य का सृजन कोई न कर सकता है।

काव्याभ्यास – आपने निरन्तर काव्य सृजन का अभ्यास गुरू के समीप रहकर एवं स्वयं के द्वारा किया है, गुरू ने आपकी प्रतिभा को निखार कर आपको आज काव्यजगत एक श्रेष्ठ मनीषी के रूप प्रतिष्ठित किया है।

काव्य प्रयोजन – काव्य के प्रयोजन का अर्थ उन लक्ष्यों से है, जो काव्यसृजन के बाद कवि अथवा श्रोता/पाठक को प्राप्त होते हैं। भारतीय आचार्यों ने काव्य के उन प्रयोजनों पर विस्तार से विचार किया है।

आचार्य भरतमुनि का मत है कि काव्य सुख एवं विश्रान्ति का जनक, धर्म, यश, आयु, हित और बुद्धि को विकसित करने वाला तथा लोकोपदेश का प्रदाता है। भामह ने काव्य के इसी प्रयोजन को निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया है –

धर्मार्थकायमोक्षेषु, वैचक्षण्यं कलासु च।
करोति कीर्तिं प्रीतिं च साधुकाव्यनिबन्धनम्।।

भामह का विचार है सुन्दर काव्य के आधार पर कवि सदा जीवित रहता है और कुकाव्य उसकी मृत्यु का कारण है।

काव्यप्रकाश में आचार्य मम्मट ने काव्य के ६ प्रयोजन अंकित किये हैं –

१. यशप्राप्ति – आचार्यश्री द्वारा रचित 'पानी है जीवन की बूँद' यह काव्य सम्पूर्ण काव्य जगत में नहीं, अपितु जनसामान्य में पढ़ा जाने वाला, सुना जाने वाला और नाट्यीय मंचन किये जाने वाला काव्य है। इस काव्य ने बहुत यश प्राप्त किया जा है, जो कि काव्य के इस प्रयोजन को दिग्दर्शित करता है। शायद ही कोई ऐसी पूजा, विधान आदि के कार्यक्रम हो, जहाँ इस काव्य का गायन न होता हो।

२. अर्थप्राप्ति – अर्थगौरव से भरा हुआ यह काव्य इनकी प्रतिभा का अद्‌भुत उदाहरण है। जहाँ एक ओर वैराग्य की चर्चा है, वही दूसरी ओर मानवीय मूल्य और नैतिकता की चर्चा है। प्रत्येक पंक्ति का बहुत ही सुंदर अर्थ है। सच्चे ज्ञान को स्पष्ट करते हुये कहा है –

कोई जीता है तन को, कोई जीता है मन को,
कोई जीता चेतन को-२
जीना तो मजबूरी है, कहते बहुत जरूरी है
चेतन को जीना, हो-हो-२, सद्‌ज्ञान कहाये रे-ऽऽ

अर्थ – कोई व्यक्ति तो शरीर की सुंदरता को प्रमुखता देता है, कोई मन के अनुकूल कार्य करने के लिये जीता है और कोई-कोई अपने आत्मतत्त्व की प्राप्ति के लिये जीवन जीता है। जीते सभी है, परंतु लक्ष्य-लक्ष्य अलग है। जिसका लक्ष्य आत्मज्ञान है वास्तव में समीचीन सच्चा ज्ञान

वही है।

३. व्यवहारज्ञान – जिन कार्यों को करने से हम जीव मात्र के प्रति समर्पित होकर कार्य करते हैं, जहाँ मात्र धर्म की चर्चा नहीं है, वहाँ नैतिकमूल्य, संस्कार, आचार–विचार, विनय, सात्त्विकप्रवृत्ति आदि समस्त बातों का ध्यान रखा जाता है, वहाँ व्यवहार ज्ञान होना आवश्यक हो जाता है। आचार्यश्री ने अपने काव्य में इन बातों का विशेष ध्यान रखा है।

४. अमंगलनाश – काव्य के प्रयोजनों में सुस्पष्ट है कि जब भी काव्य लिखा जाता है, पढा जाता है तो उससे अमंगल का नाश होता है। आचार्यश्री मानतुंग स्वामी द्वारा जब भक्तामर स्तोत्र की रचना हुई तो अमंगल स्वरूप जेल के ताले टूट गये, और आज वर्तमान में असाध्य से असाध्य रोग भी इस काव्य को पढ़ने से ठीक हो जाते हैं। चारों ओर मंगल छा जाता है। ऐसे ही आचार्यश्री का यह काव्य भी अमंगल का नाश करने वाला है।

५. आनन्द – काव्य की मुख्य विशेषता तो यही है कि काव्य को पढे, सुने तो आनन्द आये, जो कि इस काव्य में चहुँ ओर स्थापित है। इस काव्य को जब गायन पद्धति से पढा जाता है तब स्वयमेव नर–नारी झूम जाते हैं, इसके आनन्द में रम जाते हैं। अर्थ की प्रतीति करते हुये आनन्दित होते हैं।

६. उपदेश – प्रत्येक काव्य लक्ष्य और लक्षण के बिना नहीं होता है। यही काव्य भी लक्ष्य और लक्षण के गौरव से सहित है। लक्ष्य तो आनन्द की प्राप्ति, और वह आनन्द है मुक्ति की प्राप्ति में। यह काव्य उपदेशात्मक भी है। इसमें लौकिक और पारलौकिक दोनों अवस्थाओं के उपदेश दिये गये हैं, एक छोटे–से उदाहरण से समझ सकते हैं –

अच्छा–अच्छा खूब करो, बुरे कृत्य से खूब डरो,
नाम प्रभु का मत बिसरो–२
अच्छा सच्चा बन जाये, तब ही नवजीवन पाये,
अच्छा जग में सुख, हो–हो–२ सच्चा मुक्ति पाये रे–ऽऽ

काव्य गुण - काव्य में गुणों की उपस्थिति से सौन्दर्य में वृद्धि होती है। दण्डी गुणों के विषय में कहते हैं -

दोषाः विपत्तये तत्र गुणाः सम्पत्तये यथा।

दोष यदि काव्य में विपत्ति के लिये है तो गुण सम्पत्ति के लिये है।

जो काव्य की शोभा बढ़ाते हैं वे गुण कहलाते हैं।

शब्दगत और अर्थगत ये दो गुणों के भेद है।

१. शब्दगत - आचार्यश्री ने अपने इस हिन्दी काव्य में संस्कृत, प्राकृत, स्थानीय भाषाओं और बोलियों के शब्दों को उपयोग किया है, जो कि काव्य की शोभा को बढ़ाने वाला है। जैसे उन्होंने बुंदेली भाषा के शब्द 'डोकरो' का प्रयोग किया, जिसका अर्थ होता है, वृद्ध व्यक्ति। ऐसे ही अनेक स्थलों पर प्रयोग परिलक्षित है।

वेटा बहु सोचे, हो-हो-२, डोकरो कब मर जाये रे - ऽऽ

२. अर्थगत - अर्थ की दृष्टि से भी यह काव्य अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। एक स्थान पर आचार्यश्री अपने काव्य के छंद में - 'अरघट', 'करवट', 'मरघट' का प्रयोग किया है, जिसके अर्थ, काव्य की शोभा को बढा रहे हैं।

जीवन बीता अरघट में, पुण्य-पाप की करवट में,
चढ़कर अर्थी पर जाये, अन्त समय भी मरघट में,
तेरा ही बेटा, हो-हो-२, तेरा कफन सजाये रे - ऽऽ

इस प्रकार से हिन्दी काव्य परम्परा में आचार्यश्री विमर्शसागरजी महाराज के काव्य जीवन है पानी की बुँद का महत्त्वपूर्ण योगदान एवं अवदान है। काव्य जगत की यह वह धरोहर है, जो जनसामान्य को आनन्द, उत्साह, धैर्य, संबल, लौकिक जीवन जीने की कला, पारलौकिक जीवन के प्रति जागरूकता, आत्महित के प्रति सजगता, चारित्र के प्रति दृढ़ता, मानवीय मूल्यों के प्रति चेतनता, आत्मगौरव, आत्मरक्षण-संरक्षण, अपने सांसारिक और पारमार्थिक कर्त्तव्य के पालन का उपदेश, देश समाज और राष्ट्र के प्रति समर्पण की भावना, नकारात्मक जीवन से

सकारात्मक जीवन की प्रवेश, जीव मात्र के प्रति प्रेम और सार्वभौमिक एवं वृहद् दृष्टिकोण को परिलक्षित करता हुआ उनका यह काव्य, काव्य जगत की शोभा है।

- डॉ. आशीष जैन आचार्य
कटारे मोहल्ला, शाहगढ़, सागर म.प्र. 470339
9329092390, aasheishjain@gmail.com

आचार्यश्री विमर्शसागरजी महाराज द्वारा रचित में अवदान 'जीवन है पानी की बूँद' में प्रतिपादित मानव के कर्त्तव्य

- पं. राजेश जैन शास्त्री, ललितपुर

शैले शैले न माणिक्यं, मौक्तिकं न गजे गजे।
साधवः न हि सर्वत्र, चन्दनं न वने वने।।

यथा प्रतिपर्वत हीरा, मणि आदि प्राप्त नहीं होते, प्रत्येक हाथी के मस्तक से गजमुक्ता प्राप्त नहीं होते, प्रत्येक वन में चन्द न की उपलब्धि नहीं होती है उसी प्रकार इस कलिकालमें सर्वत्र साधु प्राप्त नहीं होते हैं। वह तो श्रमण परम्परा की उसीम कृपा है जो आज हमें सर्वत्र साधुआं के दर्शन सुलभ है, अन्यथा वर्तमान में हमें कौन अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाता? जहाँ आचार्यश्री विमर्शसागरजी महाराज ने अपनी उत्कृष्ट चर्या के माध्यम से जनसामान्य का चारित्र दृढ़ किया और मुनि परम्परा का विकास किया। वही आचार्य महाराज ने श्रावकों की क्षीण होती बुद्धि को ध्यान में रखते हुये श्रुतपरम्परा को वृद्धिंगत किया। आचार्यश्री की लेखनी से उद्धृत 'जीवन है पानी की बूँद' कृति गागर में सागर की तरह अनुपम व अलौकिक है जिसमें से मैंने अपनी अल्पज्ञ बुद्धि से कुछ मानव-कर्त्तव्यों के मायने को प्रस्तुत किया है।

मानव जीवन एक बीज से वृक्ष तक की यात्रा है जिसमें उसे जैसे संस्कार व संगति से सिंचित किया जाए वह वैसी ही अवस्था को प्रापत कर लेता है। श्री जयशंकर प्रसाद ने आने नाटक चन्द्रगुप्त में सिंहरण नामक पात्र से कहलवाया है कि 'मानव दानव से भी दुदन्ति, पशु से भ बर्बर और पत्थर से भी कठोर करूणा के लिये निवकाश

हृदयवाला कब हो जायेगा, नहीं कहा जा सकता है।'

उक्त विचारों से स्पष्ट है कि मनुष्य को अपने कर्त्तव्यों का भान हो तो उसे दानव बनने से रोका जा सकता है कर्त्तव्य बोध होने के बाद तो दानव भी मानव बन सकता है, समय रहते यदि मनुष्य के विचारों में परिवर्तन करके कर्त्तव्यों का स्मरण कराया जए तो श्रेयस्कर है, लेकिन वर्तमान की चकाचौंध में प्राणी इतना व्यस्त है कि उसके पास हमेशा समयाभाव है, जिससे वह दायित्त्व का स्मरण नहीं करता, तब स्वकर्त्तव्य को बोध कराने के लिये उसे 'जीवन है पानी की बूँद' जैसी अतिप्रसिद्ध कृति सारभूत प्रतीत होती है, सिमें अत्यंत सरल शब्दों के द्वारा मनमोहक पंक्तियों से मानव कर्त्तव्य का बखन किया है उक्त कृति में निम्न प्रकार से मानव कर्त्तव्य उल्लिखित है –

परोपकार –

निज पर का उपकार करो, आतम का उद्धार करो।
प्राणी मात्र से प्यार करो, प्राणी मात्र से प्यार करो।

उक्त पंक्यिों में आचार्यश्री ने आचार्य उमास्वामी विरचित तत्त्वार्थ सूत्र के सूत्र 'परस्परोपग्रहो जीवानाम्' के भावार्थ को चरितार्थ करते हुये परोपकार की भावना को मानव जीवन का कर्त्तव्य बताया है परोपकार को भावना से मनुष्य का जीवन मंगलमय होगा, और परमानंद की प्राप्ति होगी, यहाँ पर आचार्यश्री ने वृक्ष, नदी और गाय के समान उपकार की बात कही है कि जैसे वृक्षादिक उपकार करके वांछा नहीं करते हैं, वैसे ही मनुष्यों को उपकार करना चाहिये, अतएव आचार्यश्री की पंक्तियों में नीतिकार के श्लोक की बात चरितार्थ होती है –

परोपकाराय फलन्ति वृक्षाः, परोपकाराय दुहन्ति गावः।
परोपकाराय वहन्ति नद्याः, परोपकारार्थमिदं शरीरम्।।

२. सत्कर्म – करता जो सत्कर्म यहाँ, पाता उत्तम धर्म यहाँ।

अवतरित पंक्यिों में आचार्यश्री ने मानव का द्वितीय कर्त्तव्य सत्कर्मों को करना बतलाया है और कहा है कि जो सत्कर्मों को करता है वह उत्तम धर्म को पाकर कभी भी दु:खमात्र को प्रापत नहीं करता है तथा सुख के

सरोवर में सदैव स्नान करता है, वहीं आचाग्रश्री ने कहा है कि प्रभु पूजा व दानादिक करके अच्छे कर्म किये जा सकते हैं।

प्रभुपूजा और दान करो, नरभव का सम्मान करो।

३. सदाचार - अच्छा आचरण भी मानव जीवन का अग्रिम कर्त्तव्य है जिससे मानव जीवन की बगियाँ महकने लगती है आचार्यश्री ने कहा है

जीवन स्वच्छ बनाना है, सदाचार अपनाना है।

सच्चे मानव बन करके, मानव धर्म निभाना है।।

वही सदाचार को परिभाषित करते हुये कहा है -

आदर्शो का आदर हो, सदाचार की चादर हो।

गुरु का समादर हो-२

अर्थात् मनुष्य को अपने आदर्शो को चित्त में स्मरित कर गुरू क समादर की बात कही है क्योंकि सदाचार की अपेक्षा तो गुरू के माध्यम से ली जाती है।

४. संगति - पानी की बूँद के समान मानव जीवन भी कच्ची माटी की तरह है जिसे जैसे संगति में ले जाओगे वह वैसा ही हो जायेगा जैसा कि आचार्यश्री ने कहा है -

मानव जीवन पाया है, भोगां को अपनाया है।

नशा करम का छाया है- २

भैया कुछ सत्संग करो जीवन में कुछ रंग भरो।।

वही आचार्यश्री ने कुसंगति से बचकर सद्गुरु की शिक्षा ग्रहण करने को कहा है जो जीवन में सारभूत है।

संगति से बच जाओगे, घुन सम न पिस पाओगे।

सद्गुरू की शिक्षा हो हो-२ क्यों अरे भुलाये रे - ऽऽ

५. संस्कार -

जन्मतो जायते शूद्रः संस्कारात द्विजमुच्यते।

अर्थात् मनुष्य जनम से शूद्र (अपवित्र, अपूज्यनीय) होता है, तथा शली, गुण, सदाचार आदि के संस्कार से द्विज (पवित्र) हो जाता है उक्त नीति से चरितार्थ करते हुये कहा है कि संस्कार शुष्क भूमि को भी

सिञ्चित जीवन योग्य बना देते हैं –

संस्कार जब आते हैं, सुख के बादल छाते हैं
शुष्क मरूस्थल भूमि को जीवन योग्य बनाते हैं
आतम की बगियाँ हो हो, महके महकाये रे-ऽऽ

अन्यत्र भी जहाँ आचार्यश्री ने संस्कार की चर्चा की है वहाँ उसे सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति कराने वाला भी कहा है।

६. श्रावक के षट् कर्त्तव्य –

आचार्यश्री अमृतचन्द्र स्वामीजी द्वारा प्रतिपादित पद्मनन्दि पंचविंशति में कहा है –

देवपूजा गुरूपास्ति, स्वाध्याय-संयमस्तपः।
दानं चेति गृहस्थानां षट् कर्माणि दिने दिने।।

उक्त षट् कर्त्तव्यों को आचार्यश्री ने भी अपनी कृति में विभिन्न स्थानों पर अलग-अलग तरीके से जनसामान्य को अपनाने के लिये प्रेरित किया है, तथा पुण्यफल का कारण भी बताया है।

रोज करो प्रभु की पूजा, इस बिन काम न हो दूजा,
गुरू उपासना करो-करो-२
स्वाध्याय, संयम पालो, दान करो तप अपनाओ
यह षट् आवश्यक हो हो-२ श्रावक अपनाये रे-ऽऽ

७. सामान्य कर्त्तव्य – आचार्यश्री ने जनसामान्य के लिये अन्य कर्त्तव्यों की भी चर्चा की है जो निम्न है –

सेवा मनुष्य का परम धर्म है जिससे विनय व प्रीति उत्पन्न होती है।श्रावक को रात्रि भोजन का त्याग करके सूर्यास्त के पूर्व भोजन करना चाहिये।

ईश्वर का प्रतिदिन सुबह शाम जाप करने से पाप कर्म कटते हैं तथा सुख की प्राप्ति होती है।

नीतिगत बातों को बताते हुये आचार्यश्री ने कहा है कि दुर्जन, परस्त्री व परधन की हमेशा उपेक्षा करनी चाहिये क्योंकि ये हमेशा दु:खदायी होते हैं।

अच्छी सोच ही हमारे अच्छे जीवन का जनक होती है, अतएव खोटे चिन्तन को छोड़कर समीचीन विचार ग्रहण करना चाहिये।

उपसंहार - उक्त बिन्दुओं से तथा सामान्य कर्त्तव्यों की विवेचना से स्पष्ट होता है कि आचार्यश्री ने अधिकांश उन सभी मानव कर्त्तव्यों की विवेचना की है जो एक मनुष्य को सुदृढ़ व श्रेष्ठ जीवन जीने में उपयोगी है, अतएव मेरी दृष्टि में गागर में सागर से अभिभूत 'जीवन है पानी की बूँद' कृति को प्रत्येक मनुष्य को अपने जीवन में उतारना चाहिये। जिससे वह श्रेष्ठता की ओर अग्रसर हो सके।

'जीवन है पानी की बूँद' के सन्दर्भ में अहिंसा धर्म की प्रासंगिकता

- पं. मुकेश जैन शास्त्री, ललितपुर

धर्मस्य हि दया मूलं तस्यामूलमहिंसनम्।
परिग्रहवतां पुंसा हिंसनम्सत्तोदभयम्।।
पदमपुराण६/२८६

अर्थात् धर्म को दया का मूल कहा गया है और दया का मूल अहिंसा रूप परिणाम है परिग्रही मनुष्यों के द्वारा हिंसा निरंतर होती रहती है। इसका वैज्ञानिक विश्लेषण आचार्यश्री रविषेण ने किया है कि जिसका चित्त एकाग्र है ऐसे सर्व परिग्रह का त्याग करने वाले मुनि ही ध्यान करने योग्य तत्त्व का ध्यान कर सकते हैं। क्योंकि परिग्रह की संगति से प्राणी के राग-द्वेष की उत्पत्ति होती है। जिससे हिंसा का पाप लगता है।

जैनदर्शन में केवल चारित्रिक नियमों की संहिता नहीं है अपितु यह वह धर्मा है जिसमें जीव जगत, परमात्मा, सत्य, अहिंसा, प्राणी मात्र के प्रति करूणा का भव इत्यादि विषयों पर गंभीरता पूर्वक विचार किया जाता है। उसका प्रतिपादन सर्वज्ञ परमात्मा ने किया थ कोई भी जीव अपना विकास कर सर्वज्ञ पद की प्राप्ति कर सकता है।

ग्रन्थ परिचय - परम पूज्य आचार्यश्री विमर्शसागरजी महाराज द्वारा रचित भजन 'जीवन है पानी की बूँद' जन-जन तक पहुँचा है, एवं जन-जन ने इसे गायन के रूप में लेकर इसकी प्रसिद्ध को बढ़ाया है। इसी भजन के आश्रय लेकर आचार्यश्री ने लगभग १००० पद्यों से रचना करके 'जीवन है पानी की बूँद' एक महाकाव्य की रचना की है। उक्त ग्रन्थ की मूल भाषा हिन्दी है। परंतु अनेक स्थानों पर संस्कृत और प्राकृत

भाषा के तत्त्व स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। अनेक बोलियों जैसे बुंदेली, बखेली, व्रज आदि का भी सम्मिश्रण यहाँ देखने मिलता है। जैनदर्शन के प्रत्येक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों को काव्य के रूप में संजोये का श्रेष्ठ उपक्रम यहाँ किया गया है।

अहिंसा - अहिंसा परमो धर्मः अर्थात् अहिंसा ही परम धर्म है। सभी धर्मों में अहिंसा का विवेचन मिलता है उक्त ग्रन्थ के आधार पर आचार्यश्री ने अहिंसा धर्म को कई पद्यों में अपनी काव्य परख शैली में विवेचित किया है जैसे - पृष्ठ संख्या-२८ पर सभी धर्मों को आह्वानित करते हुये कहते हैं कि -

धर्म अहिंसा प्यारा है, सब धर्मों से न्यारा है,
भव-भव का यही किनारा है-२

अर्थात् अहिंसा धर्म जैन धर्म में ही नहीं अपितु सभी धर्मों में प्रमुख सिद्धान्त बताया गया है क्योंकि यदि इस संसाररूपी समुद्र से बाहर निकलकर अपने जीवन का उद्धार करना है तो निश्चित रूप से अहिंसा धर्म से प्यार करना पडेगा। आचार्यश्री उमास्वामी महाराज तत्त्वार्थसूत्र ग्रन्थ में लिखते है कि -

प्रमत्तयोगात् प्राणव्यपरोपणं हिंसा।

अर्थात् प्रमाद के योग से प्राणों का छेदन-भेदन करना हिंसा है इसी भाव को रेखांकित करते हुये उक्त ग्रन्थ में आचार्यश्री ने लिखा है -

मोह चदरिया कोछोडो धर्म चदरिया को ओढ़ो।
यदि प्रमाद हो गया प्रभो, जीवों को दुःख दिया विभो।।

यहाँ पर मोह के त्याग का उल्लेख किया है क्योंकि मोह ऐसी चादर है जिसे जो व्यक्ति ओढ लेगा वह अपनी आयु को निश्चित क्षीण कर लेगा। मोह व्यक्ति के प्राणों का घात करता है। प्रमाद के वशीभूत होकर द्रव्य प्राणों का विनाश होना निमित्त नहीं है अपितु हिंसा के अन्य भी निमित्त हो सकते हैं प्रमाद के योग से भाव प्राणों का विनाश होता है अर्थात् भाव प्राणों का विनाश ही यर्थात् में हिंसा है। पं. आशाधरजी ने सागर धर्मामृत में कहा है कि-

विरतिः स्थूलवधादेर्मनो वचनोङ्गकृत कारितानुमतैः।
क्वचिद् परेऽप्यननुमतैः पंचाहिंसाद्यणुव्रतानि स्युः।।

अर्थात् मन-वचन-काय और कृत-कारित-अनुमोदना से स्थूल हिंसा आदि पाँच पापों के त्यागने को अणुव्रत कहते हैं।

हिंसा के चार भेद -

१. संकल्पी हिंसा - निर्दोष जीवों को जान-बूझकर मारना।

२. उद्योगी हिंसा - जीविका सम्पादन के लिये कृषि, व्यापार, नौकरी आदि कार्यों द्वारा होने वाली हिंसा।

३. आरंभी हिंसा - सावधानी पूर्वक भोजन बनाने, जल भरने आदि कार्यों में होने वाली हिंसा।

४. विरोधी हिंसा - अपनी या दूसरों की रक्षा के लिये की जाने वाली हिंसा विरोधी हिंसा है।

इनमें से गृहस्थ श्रावक संकल्पी हिंसा का त्यागी होता है। शेष तीनों हिंसाओं में यथासम्भव यत्नाचार पूर्वक प्रवृत्ति करता है यदि यत्नाचार पूर्वक प्रवृत्ति न करें तो अन्य हिंसा भी संकल्पी ही मानी जायेगी।

आचार्यश्री उक्त ग्रन्थ में पेज नं. ९२-९३ में एक अहिंसा प्रेमी व्यक्ति के लिये भाव व्यक्त करते हुये लिखा है कि -

स्वस्थ भाव से हो भोजन, स्वास्थ के लिये हो भोजन
मात्र स्वाद के लिये नहीं,
जो खाते अटरम-सटरम, जीवन भर वो पाते गम।
यह तन रोगों का, हो-हो-२, खुद बन जाये रे-ऽऽ
जीवन है पानी की बूँद..

अर्थात् व्यक्ति अपने स्वस्थ (शुद्ध) भाव से अपने शरीर को देखते हुये भोजन करें जिसमें 'अटरम-सटरम' वह अशुद्ध सामग्री का खान-पान न करें। न ही वह बाजार से बनी हुई सामग्री (चाट-पगोडी) भोज्य सामग्री का उपयोग करें। जिससे वह स्वस्थ तो रहेगा ही और धर्म का निर्दोषपूर्वक पालन होगा। आचार्यश्री आगे लिखते हैं -

मर्यादा का भोजन हो, मर्यादा में भोजन हो,

तब जैनी कहलाओगे - २
मर्यादा का ख्याल नहीं, खाओ-पिओ हर हाल कही
जैनी होकर भी, हो-हो-२ कुल नाम डुबाये रे-ऽऽ

अर्थात् भोजन ऐसा हो कि शुद्ध वस्तुओं से बना हो बनाने के पश्चात् मर्यादित समय के अन्दर कर लिया जाये। कहने का तात्पर्य है कि ऐसा भोजन करो जिसमें अष्ट मूलगुणों का पालन भी होता जाये और रात्रि भोजन न करना पड़े। रात्रि में भोजन करना अभक्ष्य तो है स्वास्थ्य के लिये भी हानिकारक है जिससे हमारा जीवन अस्पतालों में ही निकल जाता है न, हम समाधिमरण कर पाते न ही हम नरक तिर्यंच गति के बन्ध से बच पाते जिससे हमारे हमें जीवन का चक्र समय कष्टों में गुजारना पड़ता है। नरकों में तो इतना दुःख है, जिनका बखान नहीं किया जा सकता है इसलिये हमें जो धर्मानुकूल समय है उसके अनुसार अपना जीवन जीवें।

जैनधर्म में अहिंसा की अवधारणा - अहिंसा का अर्थ केवल हिंसा न करने तक ही सीमित नहीं है। अहिंसा का अर्थ - मनसा, वाचा, कर्मणा से किसी के प्रति बुराई का भाव न रखना। आचार्य अमृतचन्द्र जी पुरुषार्थ सिद्धि-उपाय में कहते हैं -

अप्रादुर्भावः खलु रागादीनां भवत्य हिंसेति।
तेषामेवोत्पत्ति हिंसेति जिनागमस्य संक्षेपः।।

अर्थात् अपने शुद्धोपयोग रूप प्राण का घात रागादिक भावों से होता है, अतएव रागादिक भावों का अभाव ही अहिंसा है और शुद्धोपयोग रूप प्राणघात होने से उन्हीं रागादिक भावों का सद्भाव हिंसा है परम अहिंसा धर्म प्रतिपादक जैन धर्म का यही रहस्य है।

आचार्यश्री ने अपने काव्यग्रन्थ में हिंसा को द्रव्यहिंसा और भाव हिंसा में विभक्त किया है पेज नं. १८२-१८३ में द्रव्य हिंसा, भाव हिंसा का मार्मिक उल्लेख करते हुये कहते हैं -

भाव अहिंसा लाना है, अब जैनत्व जगाना है।
आज दशहरा का शुभ दिन, हिंसा भाव मिटाना है।

कहने का तात्पर्य है कि यदि अंतरंग भावों के द्वारा हम बैर भाव को छोड़कर सदाचार धारण कर ले और अपने जैनत्व के संस्कारों को जीवन्त रखे तो दशहरा के शुभ दिन हम रावण के पुतले की आहूति न देकर सबसे प्रेमपूर्वक गले मिले इससे द्रव्य और भाव हिंसा के पाप से बचे रहेंगे।

सारांश – अहिंसा का अर्थ केवल ऋषियों और संतों के लिये जीवन्त नहीं है यह तो प्रत्येक प्राणी को भी अपनाना होगा। महात्मा गाँधी ने अपने जीवन में अहिंसा को अत्यधिक महत्त्व दिया है अहिंसा को उन्होंने सर्वोच्च धर्म नैतिकता का उपाया बताया है। अत: अहिंसा ही विश्व शांति का उपाय है इससे ही संस्कारों की स्थापना हो सकती है।

आदर्श जीवन का पथ

- पं. मनोज जैन शास्त्री, नरसिंहगढ़

जीवन हम आदर्श बनाये, अनुशासन के नियम निभाये, सम्पूर्ण जैन दर्शन एवं जैनसाहित्य एक आदर्श जीवन के निर्माण के लिये विशेष महत्त्व देता है। जैन-दर्शन के सारे प्रमुख ग्रन्थ इसके निर्माण पर ही जो रदेते हैं। जैनग्रन्थों की गीता कहे जाने वाले तत्वार्थसूत्र ग्रन्थ (आचार्य उमास्वामी कृत)चारित्र उसे पूर्णता प्रदान करते है।

'जीवन है पानी की बूँद' काव्यग्रन्थ में भी आदर्श जीवन का पथ कैसा होता है? और हम इसे कैसे प्राप्त कर सकते हैं? इस बारे में विस्तार से वर्णन किया गया है। जिसे हम निम्न बिन्दुओं के माध्यम से समझ सकते हैं -

१. सदाचार - आदर्श जीवन का प्रथम सोपान सदाचार है, जिसकी शुरूआत बचपन से ही होती है जहाँ से संस्कारों का बीजारोपण किया जाता है, कहा भी है -

बच्चों को सद्शिक्षा दो, संतों को सद्भिक्षा दो,
कर्त्तव्यों की दीक्षा लो-२
मात-पिता की सेवा हो, प्रेमभाव का मेवा हो,
भैया ऐसा कुल, हो-हो-२ प्रभु घर कहलाये रे-ऽऽ

जहाँ बच्चों को अच्छी शिक्षा, संतों को सद्भिक्षा, माता-पिता की सेवा हो, वही सतो सदाचार होगा। इसके आगे भी कहा है -

बूढे हो या हो बच्चे, संस्कार जब हो अच्छे।
तभी बनेंगे ये सच्चे-२
संस्कार शुभ लाओगे, जीवन सफल खाओगे,
संस्कार सबको, हो-हो-२, सत्पथ दिखलाये रे-ऽऽ

वास्तव में जहाँ संस्कार अच्छे है, सदाचरण है वहीं से आदर्श जीवन के पथ की शुरूआत है। इसलिये बच्चों में अच्दे संस्कारों का बीजारोपण करे और आदर्श जीवन को निर्माण करें।

२. धर्माचरण - यह आदर्श जीवन के पथ का द्वितीय सोपान है। अच्छे संस्कारों के बाद ही धर्माचारण आता है। एक श्रावक के लिये धर्माचरण का क्या मतलब होता है इस बारे में आचार्यश्री ग्रन्थ में लिखते हैं -

रोज करो प्रभु की पूजा, इस बिन काम न हो दूजा,
गुरू उपासना करो-करो-२
स्वाध्याय संयम पालो, दान करो, तप अपना लो,
यह षट् आवश्यक, हो-हो-२ श्रावक अपनाये रे-ऽऽ

अर्थात्

देवपूजा गुरूपास्ति, स्वाध्याय संयमस्तपः।
दानं चेति गृहस्थानां षट् कर्माणि दिने-दिने।

धर्माचरण की जरूरत के बारे में ग्रन्थ में आचार्यश्री लिखते हैं -

धर्म भाव जब आता है, साथ आचारण लाता है।
जहाँ धर्म आचरण नहीं, पाखण्डी कहलाता है।
बिन आचरण के, हो-हो-२, नहीं धर्म दिखाये रे-ऽऽ

इसके अलावा इस ग्रन्थ में अनेक जगह धर्माचरण की चर्चा है जैसा कि -

भावों से मंदिर आओ सच्चे श्रावक बन जाओ,
दान और पूजा करके, श्रावक पद का फल पाओ,
मानव जीवन यह, हो-हो-२, दुर्लभ कहलाये रे-ऽऽ

दुर्लभ मानव जीवन पाकर भी यदि धर्माचरण नही किया तो हीरे को कंकण के मोल बेचने जैसा है। इसलिये धर्माचरण करना 'आदर्श जीवन के पथ' परमावश्यक है।

३. निश्छलता एवं निष्कपटता - वस्तुतः मानव धर्माचरण तो अपना लेता है लेकिन मायाचारी नहीं छोड़ता। एक आदर्श जीवन के लिये आवश्यक है कि हमारे मन में कोई छल-कपट न हो, कहा भी है।

धर्म हृदय में आता है, निश्छलता को लाता है,
निर्मलता प्रगटाता है-२

और भी कहा है -

छल की छल करता रहता, पाप घड़े को ही भरता है,
खेटी करनी से, हो-हो-२, क्या सुख मिल पाये रे-ऽऽ

छल-कपट करोगे तो छाले आत्मा में ही पड़ेंगे, भुगतना खुद को ही है, कर्म से कोई बच नहीं सकता है चाहे वो राम हो या रावण हो। कहा भी है -

किया काम कब-कब चोखा, दिया यहाँ कब-कब धोखा,
कर्म करे लेखा-जोखा-२
करनी का फल पायेगा, कर्म से न बच पायेगा,
कर्मों के कारण, हो-हो-२, रावण राम दिखाये रे-ऽऽ

४. विनम्रता - विनम्रता वह गुण है जो आचरण से झलकती है और मुँह से प्रगट होती है। इससे हम सभी को अपने वश में भी कर सकते हैं। इसलिये ग्रन्थकार कहते हैं -

अपना मुख जब खोलो तुम, मीठा-२ बोलो तुम,
मधुर प्रेम रस घोलो तुम-२
जो बोलेगा हितकारी, उसकी सबसे हो यारी,
वाणी व्यक्ति का, हो-हो-२, व्यक्तित्व दिखाये रे-ऽऽ

और भी कहते हैं -

मीठा-मीठा बोल अरे, अन्तर के पट खोल अरे।
बोल न दिल में चुभ जाये, सबसे पहले तौल अरे।
वाणी प्राणी का, हो-हो-२ दर्पण कहलाये रे-ऽऽ

आचार्यश्री ने विनम्रता को यहां आदर्श जीवन पथ बतलाते हुये मधुर वाणी बोलने की उपयोगिता सिद्ध की है।

५. संयम एवं समता - आचार्यश्री इस काव्य ग्रन्थ 'आदर्श जीवन का पथ' बतलाते हुये संयम एवं समता को एक आवश्यक घटक बताते है। आदर्श जीवन की कल्पना भी इनके बिना नहीं की जा सकती है। हमारे

जीवन में यदि संयम एवं समता नहीं है तो हमारा मानव जीवन बिना ब्रेक की गाड़ी जैसा है। समता की उपयोगिता बतलाते हुये आचार्यश्री लिखते हैं –

फूलों में न फूलों तुम, शूलों में न कूलों तुम,
समता को अब छू लो तुम-२
समता लाती शान्ति सदा, रहती नहीं अशान्ति कदा,
समता मानव को, हो-हो-२ भगवान बनाये रे-ऽऽ

और भी कहा है –

कोई रहता राजमहल, कोई रहता है जंगल।
कोई रहता कुटिया में,
सन्तों का गहना समता, समता से मिटती हममता,
समता बिन भव-भव भ्रमता-२
समता का संचार जहाँ, नहीं कटुक व्यवहार वहाँ,
समता से मन का, हो-हो-२, दर्पण धुल जाये रे-ऽऽ

वास्तव में समता का जीवन में होना परमावश्यक है। संयम की उपयोगिता के बारे में आचार्यश्री लिखते हैं –

गधा मजदूरी करता है, संयम से तू डरता है,
जीवन में आनंद कहाँ-२
भोगों का तू दास बना, पायेगा तू दुःख घना,
संयम जो पाले, हो-हो-२, वो आनन्द पाये रे-ऽऽ

और भी कहा है –

संयम जो अपनाता है, भवसागर तिर जाता है,
आत्मज्ञान बिन संयम भी, भव-भव में भटकाता है।
संयम मानव का, हो-हो-२, श्रृंगार कहाये रे-ऽऽ

इस प्रकार संयम के बिना मानव जीवन निरर्थक है। संयम मानव का श्रृंगार है ऐसा आचार्यश्री उपरोक्त छन्द में भी कहा है।

६. सत्संगति – आचार्यश्री इस ग्रन्थ में कहते हैं कि यदि अच्छा जीवन जीना है, तो सत्संगति करो और स्वयं आदर्श बनो। जैसा कि लिखा है–

साधु संगति किया करो, अच्छा जीवन जिया करो,
धर्मामृत भी पिया करो-२
सत्संग में गर जाओगे, आनन्द से भर जाओगे,
सत्संग जैसा, हो-हो-२, सुख कही न पाये रे-ऽऽ

सत्संगति शीतल झरने की तरह होती है उसी को बतलाते हुये आचार्यश्री कहते हैं -

भव-भव की पीड़ा हरना, सन्तों की संगति करना।
सन्तों के उपदेशों में, बहता है शीतल झरना।
सन्तों की चर्चा, हो-हो-२, शिवमार्ग दिखाये रे-ऽऽ

सन्तों का जीवन साक्षात् शिवमार्ग दिखने वाला आदर्श जीवन का पथ होता है।

७. दयाधर्म - अहिंसा परमो धर्मः हमारा प्रमुख सिद्धान्त है। जिसकामूल दयाभाव है। आचार्यश्री इस बारे में लिखते हैं -

सत्य अहिंसा धर्म कहा, शील धर्म का मर्म कहा।
सब जीवों पर दया करो, सबसे उत्तम कर्म कहा।
जियो और जीवने दो, हो-हो-२, दिल में सब जाये रे-ऽऽ

इसी को आगे लिखते हैं -

आओ सबको प्यार करें, प्रेम भरा व्यवहार करें,
आगम के अनुसार करें-२
दुःख-दर्दों को बाँटे तुम, मिट जाये दुःखियों के गम,
ज्ञानी करुणा का, शुभ नीर बहाये रे-ऽऽ

आदर्श जीवन के पथ में करुणा, दया, अहिंसा का भी अपना एक अलग स्थान है जिसे नकारा नहीं जा सकता है।

उपसंहार - 'आदर्श जीवन का पथ' जो कि मेरे आलेख का विषय था। मैंने जीवन है पानी की बूँद काव्य ग्रन्थ के अनुसार एवं अपनी स्वबुद्धि के अनुसार लिखने की कोशिश की है। इसमें और अधिक भी लिखा जा सकता है सो विद्वत्गण इसमें लिख सकते हैं अंत में आचाश्री की पंक्तियों से ही आलेख समाप्त करता हूँ -

प्रभु जिसको लगते सुंदर, प्रभु रहते उसके अंदर,
अंतरमन की शुचिता से, बन जाता है मन मंदिर,
प्रभु का सुमिरन ही ,दुःखदर्द मिटाये रे-ऽऽ

यह ग्रन्थ अपने आप में एक महाकाव्य है इसके बारे में जितना लिखा जाये उतना कम है। मैं क्या लिख सकता हूँ-

मैं मति अल्पज्ञान हूँ कौन करे विस्तार।

आचार्यश्री विमर्शसागरजी एवं उनकी साहित्य साधना

- आशीष जैन शास्त्री, बम्हौरी

भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का विशेष योगदान है। उसका साहित्य सामाजिक भावना, क्रान्तिमय विचार एवं जीवन के विभिन्न उत्थान-पतन की विशुद्ध अभिव्यंजना है। जैन श्रमण परम्परा में अनेक अचार्यों ने संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, धर्म, दर्शन, ज्योतिष, ज्ञान, न्याय की विविध शाखाओं पर विपुल साहित्य का निर्माणकर नैतिक एवं आध्यात्मिक चेतना के जागरण में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। मानव के उत्कर्ष में साहित्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

जैन हिन्दी काव्य साहित्य की श्रीवृद्धि में इस युग के प्रख्यात संत मुनिकुंजर आचार्यश्री आदिसागर अंकलीकर महाराज की परम्परा के महान संत आचार्यश्री विरागसागरजीमहाराज के शिष्य परम पूज्य आचार्यश्री विमर्शसागरजी महाराज का विलक्षण योगदान है। इस निष्काम साधक द्वारा रचित हे वन्दनीय गुरुवर (काव्य), खूबसूरत लाइनें (काव्य), समर्पण के स्वर (काव्य), आइना (काव्य), मेरा प्रेम स्वीकार करो (काव्य), सोचता हूँ कभी-कभी (काव्य), कर लो गुरु गुणगान (काव्य) जैसे महाकाव्य हिन्दी साहित्य जगत की अनुपम धरोहर है। आचार्यश्री जिनसेन आदि पुराण में लिखा है -

धर्मानुबन्धिनी या स्यात् कविता सैव शस्यते।
शेषा पापस्रवायैव सुप्रयुक्तापि जायते।। आदिपुराण १.६३

अर्थात् कविता भी वही प्रशंसनीय समझी जाती है, जो धर्म शास्त्र से संबंध रखती है। उसके संबंध से रहित कविता मनोहर होने पर भी मात्र पापास्रव के लिये होती है।

कवि कबीर के समान आचार्य विर्मशसागरजी महाराज के काव्यों

में काव्य के गुण, काव्य की शैली में मोक्ष, जीवन-शोधन श्रावकाचार एवं श्रमचणाचार पर प्रकाश डाला गया है। इन कृतियों में काव्य की मधुमय शैली में ही तत्त्व निरूपित है, जिसमें पढ़कर पाठकों की अतिशय आनन्द की अनुभूति होती है।

महाकवि अश्वघोष ने कहा है - काव्य का रस सरस होता है और दर्शन का उपदेश कटु, कड़वी औषधि मधु में मिला देने पर मीठी हो जाती है, उसी प्रकार कटु उपदेश भी काव्य के सरस आश्रय से मधुर हो जायेगा। आचार्यश्री विमर्शसागरजी महाराज के काव्यों पर भी यह कथन शत-प्रतिशत लागू होता है।

जिनकी अपूर्व काव्य प्रतिभा ने विद्वज्जनगत को अत्यंत आश्चर्य में डाल दिया, ऐसे महान कवि आचार्यश्री विमर्शसागरजी महाराज के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से हम अपरिचित रहे। पुण्य योग से मध्यप्रदेश की धरती पर आचार्यश्री विरागसागरजी महाराज के परम शिष्य आचार्यश्री विमर्शसागरजी महाराज का पदार्पण हुआ और आकपे मंगल सान्निध्य में श्री दिगम्बर जैन मंदिर बड़ामलहरा में ०५ जून से ०६ जून २०१६ तक राष्ट्रिय-विद्वत्संगोष्ठी का आयोजन किया जा रहा है जिसमें भारतवर्ष के अनेक लब्ध-प्रतिष्ठ मनीषियों ने आचार्यश्री विमर्शसारगजी द्वारा रचित जीवन है पानी की बूँद नामक कृति पर शोध आलेखों का वाचन कर उनके विलक्षण पाण्डित्व के प्रति आस्था के प्रसून समर्पित करेंगे।

जैन साहित्य में हिन्दी महाकाव्यों की विच्छिन्न श्रृंखला को जोड़ने वाले मध्यप्रदेश प्रान्त की, टीकमगढ़ जिला, जतारा ग्राम में पिताश्री सनतकुमार जैन व माताश्री भगवती देवी जैन की कोख से प्रसूत गौरवर्णीय श्री राकेश जैन हुये।

बचपन से ही आप धार्मिक रुचि वाले थे। जतारा नगर में परम पूज्य आचार्यश्री विरागसागरजी महाराज के वैय्यावृत्ति करते समय आजीवन आलू-प्याज एवं रात्रिभोजन का त्याग किया और साथ में मन ही मन गृह त्याग करने की भावना बनाई।

आपने श्री सिद्धक्षेत्र श्री अहारजी में भगवान शान्तिनाथ की

चरण-छाया में फाल्गुन कृष्णा त्रयोदशी सोमवार संवत् २०५१, २७ फरवरी १९९५, को आचार्यश्री विरागसागर जी से दो वर्ष का ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण किया।

उत्तरप्रदेश की धर्मनगरी ललितपुर (क्षेत्रपालजी) में ०३ अगस्त १९९५ के दिन गुरुवार को भगवान पार्श्वनाथ के मोक्ष कल्याणक दिवस, मोक्ष्ज्ञ सप्तमी के अवसर पर गुरुवर आचार्यश्री विरागसागरजी महाराज से सामायिक प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये।

मध्यप्रदेश की हीरों की नगरी देवेन्द्रनगर, पन्ना में तपकल्याणक के दिन फाल्गुन शुक्ला पंचमी, शुक्रवार संवत् २०५२, २३ फरवरी १९९६ को आचार्यश्री विरागसागरजी महाराज से ऐलक दीक्षा ग्रहण की और ऐलकश्री विमर्शसागरजी नाम से प्रसिद्ध हो गये।

वैराग्य-भावना और दृढ़ हो गई। आजन्म पदयात्री बन गये। राग-द्वेष से ऊपर उठ गये। वैराग्य ही इस जीवंतमूर्ति से प्रभावित होकर गुरुवर श्री विरागसागर जी महाराज ने धर्मनगरी अतिशय क्षेत्र वरासो भिण्ड में पौषकृष्णा ११, संवत २०५५ सोमवार दिनांक १४ दिसम्बर १९९८ को मुनि-दीक्षा (दिगम्बर वेश) ग्रहण कर ली। सिर्फ पिच्छि-कमण्डलु ही साथ रहता है। बाकी सभी वस्तुओं/परिग्रहों का त्याग हो जाता है। यहां तक की शरीर के वस्त्रों का परित्याग करना होता है और सि8 और चेहरे के बाल भी हाथों से लौंचने पड़ते हैं और इस स्थिति को इस युवा मुनि ने अंगारों पर चलकर भीहंसते हुये अपने को धन्य माना। अब आचार्यश्री परिग्रह से अपरिग्रह की ओर असार से सार की ओर बढ़ गये। ऐलकश्री विमर्शसागरजी अब मुनि विमर्शसागरजी कहलाने लगे। ज्ञान, ध्यान और तप में लीन रहते हुये अद्वितीय प्रतिभा के उदाहरणबने मुनि विमर्शसागरजी महाराज, अब नि:सारता को अपने जीवन है पानी की बूँद भजन के रूप में सर्वप्रथम पंक्तियाँ नि:सृत हुई। उन्हीं पंक्तियों में से एक पंक्ति हैं -

जीवन है पानी की बूँद, कब मिट जाये रे-ऽऽ
होनी-अनहोनी, हो-हो-२, कब क्या घट जाये रे-ऽऽ

साथ निभायेगा बेटा, सोच रहा लेटा-लेटा
हाय बुढ़ापा आयेगा, पास न आयेगा बेटा
ख्वाबों में तू क्यों, हो-हो-२, आनन्द मनाये रे-ऽऽ

फिर तो यह भजन काव्ययात्राा साधना बन गया। त्याग और तपस्या से, चिंतन और मनन से, अध्ययन और अध्यापन से काव्य-पंक्तियाँ काव्य-वृक्ष बन गई। मुनि दीक्षा के बाद तो वे और भी अधिक निःस्पृही, निर्लिप्त हो गए। एक के बाद एक लौकिक स्वाद की वस्तु का त्याग करते गये और आप पा गये गुरु के द्वारा स्नेहि पद। सन् २००५ में कुंथुगिरि में गणाचार्य विरागसागरजी महाराज ने २०० पिच्छी के मध्य आचार्यपद घोषित किया। अपने ही हाथों गुरु दक्षिणा के रूप में आचर्यश्री विरागसारजी ने मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी, संवत् २०६७ रविवार दिनांक १२ दिसम्बर २०१० को बांसवाडा राजस्थान में आचार्यपद के संस्कार दिये। अब आप आचार्य श्री विमर्शसागरजी कहलाने लगे।

आचार्यश्री विमर्शसागरजी महाराज की इन काव्यकृतियों में मौलिक रचनाओं में 'जीवन है पानी की बूँद' महाकाव्य सर्वाधिक चर्चित हुआ है तथा काव्य कला की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ है। आपकी यह साधना पल-प्रतिपल, दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही गई। मन से पक्षपात हटा, अहं और मद गल गया, स्व को सहज में मिला दिया। ऐसी साधना के लिये आपने तन के प्रति ममत्व नहीं रखा। मन को स्थिर करके मुक्ति मार्ग की ओर अग्रसर रखा।

साधना से प्रभावित हो भारतीय जनसमूह, विशेषकर युवा पीढ़ी आपकी ओर मुड़ी है। आपके सिद्धांतों, विचारों के अनुकूल चलने, ढलने हेतु तत्पर हुई है। आने क्षेत्रीयता को महत्त्व न देकर आचरणशील, कर्मठ युवा-युवतियों को अपने संघ में दीक्षित कर अपनी ही तरह साधक, सर्जक बनाया है।

इतनी कम उम्र और अल्प समय में २० से भी अधिक शिष्य-शिष्याओं को दीक्षा-शिक्षा देकर इतना बालब्रह्मचारी साधकों का विशालसंघ तैयार कर लेना आपके व्यक्तित्व की असाधारण क्षमता का

परिचायक है। साधनारत रहते हुये आपने जिस साहितय का सृजन किया वह और भी महत्त्वपूर्ण है।

सर्वाधिक चर्चित कृति 'जीवन है पानी की बूँद' साहित्य जगत में सूर्य-चाँद की तरह प्रकाशवान् है।

आचार्यश्री विमर्शसागरजी महाराज की काव्य रचनाओं में हिन्दी के संत कवियों के समान स्व औश्र पर कल्याण की साधना/कामना विद्यमान है। आपकी कृति 'जीवन है पानी की बूँद' में स्व पर कल्याण के साथ ही धर्म, कर्म, सुख-दुःख, पूजा, भक्ति, संयम, ज्ञान, अहिंसा, तप, त्याग, दान, जिनवाणी, जिनालय, णमोकार-मंत्र, वात्सल्य, मोक्ष आदि का सर्वपक्षीय विश्लेषण दिखाई देता है। आपकी काव्य रचनाओं में जीवन की सत्यता अर्थात् स्वानुभव उभरकर सामने आया है, आपकी वाणी में सत्यं, शिवं, सुंदरं की पावन विराटता का स्वरूप विद्यमान है। आचार्यश्री की निर्दोष चर्या एवं ज्ञान के साथ ही उनकी काव्य शैली, काव्य रचना भी हृदय को छूने वाली है। आचार्यश्री का बहुत ही प्रसिद्ध भजन 'जीवन है पानी की बूँद' हर धार्मिक आयोजनों में जरूर बोला जाता है। अनेक आचार्य, मुनि, आर्यिका माताजी, त्यागीव्रती, एवं विद्वान् इस भजन को बड़े चाव से प्रवचनों में बोलते हैं।

२१वीं सदी के इस महान साहित्य साधक की साहित्य साधना का हमें रसास्वादन करना है, यही इस साधक के प्रति सच्ची अनूठी विनयाञ्जलि होगी। साहित्य जगत के इस उपकारी साहित्य-साधक को साहित्य प्रेमी अपनी बुद्धि में उच्चासन प्रदान करें। यही कृतज्ञता होगी।

न हि कृतमुपकारं साधको विस्मरन्ति।

अर्थात् वर्तमान के कवि हृदय आचार्यश्री विमर्शसागरजी महाराज द्वारा साहित्य जगत पर किये गये उपकार को न भूलें, यही मेरी भावना है।

आचार्यश्री विमर्शसागर कृत 'जीवन है पानी की बूँद' में नैतिक शिक्षा

- सुनील सुधाकर शास्त्री द्रोणगिरि

भारतीय धर्म एवं संस्कृति आदर्शों एवं नैतिक मूल्यों पर आधारित संस्कृति है। जहाँ पर सदैव त्याग, बलिदान, प्रेम, अध्यात्म को धन एवं पद प्रतिष्ठा से उत्कृष्ट माना जाता रहा है। इस संस्कृति ने महावीर, राम, कृष्ण, बुद्ध के आदर्शों को आत्मसात करके सम्पूर्ण विश्व में अप्रतिम स्थान प्राप्त किया है। श्रवण कुमार की पितृभक्ति, एकलव्य की गुरुभक्ति, महावीर की अहिंसा एवं अध्यात्म ऐसे अनेक उदाहरण है जो भारतीय संस्कृति से इतर अत्यन्त दुर्लभ है। भारतीय नैतिकज्ञान विज्ञान ने ही विश्वगुरु के रूप में प्रतिष्ठापित होकर सम्पूर्ण मानव जाति को नैतिकता एवं अध्यात्म से आलोकित किया है। प्राचीन भारतीय साहित्य, कला एवं राजनीति आदर्शों की मजबूत नींव पर ही पल्लवित होती रही है। भारतीय पुरातन शिक्षा प्रणाली में तो नैतिक शिक्षा प्राण के रूप में संचालित रही है। वर्तमान में विदेशी आक्रमण एवं पाश्चात्य संस्कृति के दुष्प्रभाव ने हमारी नैतिकता की बुनियाद को जरूर हिलाया है। पर आज भी हमारी संस्कृति के आदर्श रूप में नैतिकता उसी पुरातन रूप में विद्यमान है।

नैतिक मूल्यों का महत्त्व - नैतिक शब्द अपने आप में विशिष्ट एवं व्यापक अर्थ को समाहित किये हुये हैं। संस्कृत भाषा में नीति शब्द से ठक् प्रत्यय द्वारा नैतिक शब्द निष्पन्न हुआ है। तथा नीति शब्द नी धातु जो गतिमान अर्थ में प्रयुक्त की जाती है से निष्पन्न होता है। अतः शाब्दिक रूप से विचार करने पर प्रतीत होता है कि जिसके बिना हमारी गति संभव न हो या जिसके अभाव में हम किसी प्रकार का कार्य

सम्यक् सम्पादित न कर सके उसे नीति कहा गया है। अतः स्पष्ट है कि नीत के अनरूप अपनी वाणी क्रिया एवं चिंतन को प्रवाहमान करना ही नैतिकता है। हमारे आदर्श पुरुषों के जीवन से जुड़ी प्रत्येक घटना हमें नैतिक मूल्यों का ही पाठ सिखाती है।

नैतिकता मनुष्य का वह गुण है जो उसे देवत्व के समीप ले जाता है। नैतिकता के अभाव में पशुता एवं मनुष्यता में कोई विशेष अन्तर नहीं है। नैतिकता सम्पूर्ण मानव जीवन एवं सृष्टि का श्रंगार है। वेदों, उपनिषदों एवं संसार के समस्त धर्मग्रन्थों में नैतिकता एवं सदाचारण की शिक्षा पर विशेष बल दिया गया है। भारतीय संस्कृति में तो नैतिक मूल्यों पर विशेष बल है। दूसरे शब्दों में कहे तो अच्छे चरित्र से ही मनुष्य की अस्मिता कायम है। जैसा की संस्कृत नीति में कहा गया है –

वृत्तं यत्नेन संरक्षेत्, वित्तं आयाति याति च।
अक्षीणो वित्ततः क्षीणो, वृत्ततस्तु हतोहतः।।

अर्थात् हमें अपने चरित्र की रक्षा सावधानी पूर्वक करना चाहिये, धन तो आता जाता रहता है। धन से नष्ट व्यक्ति नष्ट नहीं माना जाता है, किन्तु सद्चरित्र से विमुख व्यक्ति सब प्रकार से नाश को प्राप्त हो जाता है। आँग्लसाहित्य में भी उपरोक्त आशय से सूक्ति कही गई है। यथा –

Wealth is lost, nothing is lost
health is lost something is lost
but character is lost everything is lost.

आज सम्पूर्ण विश्व में नैतिकता का पतन चिंता एवं भय उत्पन्न करने वाला है। भौतिकता एवं अर्थलोलुपता के युग में नैतिकता अर्थहीन एवं निशक्त हो चुकी है। जिसके दुष्परिणाम भी आज सम्पूर्ण विश्व के सामने प्रत्यक्ष दिखाई पढ़ रहे हैं।

देश में फैल रहा भ्रष्टाचार, लूटमार, आगजनी, बलात्कार आदि नैतिकता के अभाव की ही परिणति है। आज विज्ञान एवं तकनीकी के क्षेत्र में नित्य नई खोजे व प्रयोग चल रहे हैं, किन्तु मानवजाति व देश के लिये यह एक दुर्भाग्यपूर्ण बात है कि हमारे शिक्षाशास्त्रियों एवं देश के

कर्णधारों ने नैतिकशिक्षा की अनिवार्यता को कभी महत्त्व नहीं दिया। आज भी नैतिकशिक्षा विद्यालयों में अतिरिक्त विषय के रूप में यदाकदा किसी क्षेत्र स्थान संस्था विशेष में प्रचलित दिखाई पड़ जाती है। उससे भी बड़ा दुर्भाग्यतम प्रतीत होता है जब नैतिक शिक्षा को धर्म विशेष की शिक्षा मानकर धर्म निरपेक्ष संविधान की दुहाईयाँ दी जाती है, एवं नैतिकशिक्षा को राष्ट्र की एकता अखण्डता के लिये ही खतरा मानकर तिरष्कृत कर दिया जाता है। राम, कृष्ण, गौतम, महावीर के जिस देश में, राम, कृष्ण, गौतम, महावीर के संदेशों व सिद्धान्तों की शिक्षा देश की एकता अखण्डता के लिये व्यापक रूप से घातक सिद्ध कर दी गई हो ऐसे देश की भावी संतति के संस्कारित एवं नैतिक होने की आशा कैसे की जा सकती है। तथापि इस अधर्म एवं अनैतिक वातावरण के बीच भी धर्म एवं नीति के अस्तित्व का संघर्ष सतत जारी है। दुर्नीति एवं अधर्म से प्रवाहमान इस विषय पंचम काल में भी अनेक महामानव समय-समय पर जन्म लेकर अपने सदुपदेशों एवं सत्साहित्य की संरचना के माध्यम से नैतिकता की मशाल प्रज्वलित किये हुये हैं।

ऐसे ही महामानवों में एक आलौकिक विभूति आचार्य गुरुवर विमर्शसागरजी महाराज है जिन्होंने अपने तप ज्ञानाचरण एवं सत्साहित्य की संरचना करके आध्यात्म एवं नैतिकता के नूतन आयामों को स्थापित किया है। आचार्य गुरुवर का सम्पर्णू जीवन ही नैतिक शिक्षा है तथापि विषयानुक्रम में आचार्य गुरुवर द्वारा प्रणीत वृहद्काव्य 'जीवन है पानी की बूँद' में नैतिक शिक्षा के संदर्भों को उद्घाटित करने का अल्प प्रयास किया जा रहा है।

जीवन है पानी की बूँद कृति में नैतिकता के संदर्भ - जीवन है पानी की बूँद आचार्य गुरुवर विमर्शसागरजी कृत एव आध्यात्मिक एवं व्यवहारिक ज्ञान से ओतप्रोत वृहत् काव्य कृति है जिसमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चतुर पुरुषार्थ रूप नीतियों को सहज एवं सरल काव्य संरचना द्वारा उद्घाटित किया गया है।

उपरोक्त काव्य में आध्यात्मिक भावन की प्रचुरता के साथ-

साथ आदर्श जीवन जीने की कला सहज ही प्रस्फुटित होती है। आज भौतिक युग की स्वार्थपूर्ण शिक्षा में सबसे ज्यादा अनैतिक तथ्य गुरुओं के प्रति सम्मान एवं समर्पण के अभाव रूप उद्घाटित हुआ है। वर्तमान परिदृश्य को समझते हुये आचार्य गुरुवर ने उपरोक्त काव्य के माध्यम से गुरु जनों के आदर सत्कार एवं उनके प्रति सर्वोत्तम समर्पण का नैतिक मूल्य प्रस्तुत किया है। यथा –

गुरु के प्रति समर्पण –

गुरु विन ज्ञान नहीं मिलता, गुरु विन ज्ञान नहीं फलता,
मिट्टी का गुरु भी हो हो-२, विद्या सिखलाये रे।।

आगे और भी लिखा है –

गुरु विन मार्ग नहीं मिलता,
मन का दीप नहीं जलता

इत्यादि और भी बहुत सारी पंक्तियों द्वारा गुरु की मिअटी का मूर्ति का भी समादर करने का भारतीय नैतिक मूल्य उपस्थित किया है।

अतिथि समादर – भारतीय संस्कृति एवं धर्म के आदर्शवाक्य 'अतिथिदेवो भव' की परम आवश्यकता स्वीकारते हुये उपरोक्त वृहद् काव्य अतिथि सत्कार स्वरूप चार प्रकार के दान एवं उसके फल की उपस्थाना करता है। यथा –

पात्र दान जो करता है, कभी न भूखा मरता है।।
दान और पूजा कर लो, श्रावक धर्म हृदय धर लो।।

इस प्रकार से सुपात्रों एवं दीन-हीन प्राणियों के प्रति भी उपकार भावना का नैतिक मूल्य आचरणीय है।

माता-पिता की सेवा – वर्तमान परिप्रेक्ष्य में एकाककी रहने की प्रवृत्ति वृद्ध माता-पिता के प्रति उदासीनता का कारण बनती जा रही है। जिसके फलस्वरूप वृद्ध माता-पिता घर में अपमानित जीवन जीने या फिर वृद्धाश्रमों में नारकीय जीवन जीने पर मजबूर है। ऐसी विकट स्थिति में 'जीवन है पानी की बूँद' माता-पिता की सतत सेवा एवं उनके प्रति उपकार मानते रहने का आदर्श मूल्य समुपस्थित करता है। यथा –

माता-पिता गुरु की सेवा, सेवा से मिलती मेवा,
मेवा की गर चाह नहीं, मिल जाते पारस देवा।।

उक्त पंक्तियाँ निरंतर माता-पिता एवं वृद्धजनों की सेवा का सतत संदेश प्रदान करती है।

सत्य एवं मधुरवाणी का व्यवहार - संस्कृत नीतिकारों ने लिखा है -

प्रियवाक्यप्रदानेन सर्वे तुष्यन्ति जन्तवाः।
तस्मात् तदेव वक्तव्यं, वचने कः दरिद्रता।।

उपरोक्त नैतिक आदर्श को आचार्य गुरुवर ने निम्न पंक्तियों द्वारा उद्घाटित किया है। यथा -

अपना मुख जब खोलो तुम, मीठा-मीठा बोलो तुम।।
मधुर प्रेम रस घोलो तुम।।
मीठा-मीठा बोल अरे, अंतर के पट खोल अरे।।
कर्कश बोल न बोलो तुम, हित-मित-वाणी बोलो तुम।।

इस प्रकार से उपरोक्त काव्य वाणी को सत्यता, मधुरता से समन्वित करने की प्रेरणा प्रदान करता है।

खानपान की शुद्धता की प्रेरणा - आज की युवा पीढ़ी खान-पानी की शुद्धता से कोशों दूर बाजारवाद की संस्कृति से प्रभावित है। होटल एवं ढावों पर भोजन आम बात मानी जाने लगी है। इसके दुष्प्रभाव स्वरूप युवा पीढी धर्म एवं पथभ्रष्ट होकर कई तरह की बीमारियों का शिकार हो रही है। दूषित भोजन से शरीर ही नहीं विचारों में भी विकृति स्पष्ट परिलक्षित हो रही है। जैसा कि संस्कृतनीतिकारों ने लिखा है।

दीपोऽपि भक्ष्यते ध्वान्तं, कज्जलं च प्रसूयते।
यादृक् भक्ष्यते अन्नं, बुद्धि तादृशाी जायते।।

'जीवन है पानी की बूँद' वृहदकाव्य भी खानपान की शुद्धता पर विशेष ध्यान हेतु प्रेरित करता है। यथा -

भोजन घर में किया करो, भोजन घर का किया करो।
खाने में ललचाया है, जो पाया वो खाया है,
न विवेक कर पाया है।।

उपरोक्त पंक्तियों द्वारा आचार्य ने विचारों की शुद्धि एवं स्वस्थ्य जीवन हेतु भोजन की शुद्धि एवं खानपान के विवेक का आदर्श समुपस्थापित किया है।

साधु समाज के लिये भी नैतिक मूल्य की उपस्थापना – 'जीवन है पानी की बूँद' वृहद् काव्य न केवल श्रावकों के लिये बल्कि साधु समाज के लिये भी नैतिक मूल्यों की प्रेरणा प्रदान करता है। दिगम्बर जैन समाज की वर्तमान परिस्थितियाँ निश्चित ही संतोषजनक नहीं है। हमारा दिगम्बर जैन समाज विभिन्न जातियों एवं पंथों के नाम पर विभाजित और विकृत हो रहा है। ऐसी परिस्थितियों में आचार्य श्री काव्य के माध्यम से साधु समाज को भी प्रेरित करने से विमुख नहीं हुये हैं। यथा–

तेरा वीस हुये साधु, कोई दिखलाते जादू।
सच पूछो तीनों स्वादु।।
पंथवाद मत अपनाओ, पंथवाद को दफनाओ।।
पंथ ग्रन्थ जब त्यागोगे, तब निर्ग्रन्थ कहाओगे।।
हृदय विशाल बनाओ तुम, सबको गले लगाओ तुम।।
साधु लगे बनाने गढ़, इससे तो अच्छा अनपढ़।।

इत्यादि पंक्तियों द्वारा पूज्य आचार्य श्री ने साधु समाज से जाति पंथवाद से विमुख आगमपंथी बनकर धर्मप्रभावना एवं आत्म कल्याण करते रहने की प्रेरणा प्रदान की है।

इस प्रकार से उपरोक्त वृहद् काव्य में भारतीय धर्म एवं संस्कृति के अनेक नैतिक मूल्य उद्घाटित हुये हैं। जिनका आचारण एवं ज्ञान हमारे सम्पूर्ण जीवन एवं व्यक्तित्व को समुज्जवल बनाने में सहकारी हो सकता है। विभिन्न मूल्यों के अन्तर्गत उपरोक्त मूल्यों के अलावा भी बहुत सारे नैतिक मूल्य जैसे – सत्संगति, संतोषी जीवन, क्रोधादिक विकारों से हानि, वात्सल्य की आराधना धर्माचरण का उपदेश आत्म समीक्षा का संदेश आदि अभूतपूर्व नैतिक मूल्य है जो इस काव्य को वृहद् नीतिपरक काव्य के रूप में भी प्रतिष्ठापित करते है। तत्संबंधी कुछ उद्धरण भी दृष्टव्य है। यथा –

साधु संगति किया करो, अच्छा जीवन जिया करो।।
जीवन में संतोष जहा, रहता न फिर रोष वहाँ।।
क्रोधआग की ज्वाला है, क्रोध सर्प विष काला है।
इक दि हर क्रोधी हो हो, खुद ही पछताये रे।।
ईर्ष्या कभी नहीं करना, ईर्ष्या भाव नहीं धरना।।
जो करता पर की निंदा, मुर्दा है होकर जिन्दा।।
धर्म हीन नर पशु जैसा, धर्मी तीर्थंकर जैसा।।
अपने घर में झाँक अरे, पर घर में मत ताँक अरे।।

इत्यादिक अनेक ऐसे सूक्तिकाव्य है जो जो इस वृहद् काव्य को जनमानस में लोकप्रिय बनाने हेतु पर्याप्त कारण है।

जीवन है पानी की बूँद वृहद् काव्य नैतिक शिक्षा की अनगूढ शिक्षाओं के साथ-साथ जैनदर्शन के महान ग्रन्थों का भी प्रतिनिधित्व करता है।

आचार्य भगवन् कुन्दकुन्द देव के वचन है - **अहमेक्को खल शुद्धो** से लेकर आचार्य गुरुवर अमितगति के सामायिक पाठ -

स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा, फलं तदीयं लभते शुभाशुभम्।
यदि परेण दत्तं लभ्यते स्फुटं, स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदा।।

इत्यादि दार्शनिक विचारों का प्रतिनिधि काव्य भी है। अतः उपरोक्त वृहद् काव्य आध्यात्मिक, नैतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक, समसामायिक संदर्भों का उत्कृष्ट एवं प्रतिनिधि ग्रन्थ है। जिस ग्रन्थ की भाषा, शैली, शब्द चयन, एवं सरसता आचार्य गुरुवर विमर्शसागरजी महाराज के हृदय की सरसता का भी प्रतिबिम्ब चित्रित करती है। उपरोक्त ग्रन्थ प्रत्येक जनमानस के हृदय पर चित्रित होकर कालजयी कृति के रूप में प्रतिष्ठित हो जन-मन को परिष्कृत परिमार्जित करता रहे ऐसी मंगलभावना है।

आचार्यश्री विमर्शसागर कृत 'जीवन है पानी की बूँद' में अध्यात्म चिंतन की उपादेयता

- श्रीमती मालती जैन बडामलहरा

धर्मनिरपेक्षरूप से सम्पूर्ण भारतवर्ष में गुनगुनाई जाने वाली कालजयी रचना कवि हृदय सम्राट् श्रमण गौरव आचार्यश्री विमर्शसागरजी महाराज ने जीवन की नि:सारता को अपने काव्य 'जीवन है पानी की बूँद' कृति के माध्यम से समस्त पाठकों को उद्‌बोधन किया है -

जीवन है पानी की बूँद, कब मिट जाये रे
होनी-अनहोनी हो हो, कब क्या घट जाये रे
इसी तरह की बात कबीर ने भी लिखी है -
पानी केरा बुदबुदा, अरा मानुष की जात।
देखत ही छिप जायेगा, ज्यों तारा परभात।।

आचार्य श्री की 'जीवन है पानी की बूँद' कृति आध्यात्मिक रस से सरोबार है। आगम की बात आपने बिल्कुल सहज सरल तरीके से प्रत्येक मनुष्य तक पहुँचाने का प्रयास किया गया हे, आपकी छन्दबद्ध, लयबद्ध 'जीवन है पानी की बूँद' कृति प्रत्येक पाठक के हृदय तक पहुँचकर प्रत्येक पाठक एवं श्रोता मंत्र मुग्ध हो जाता है, वह स्वयं हीआत्मचिंतवन करने लगता है, वास्तव में अभी तक वो हम भोग-विलास एवं मोहनिद्रा में सुप्त थे, अब हमें इससे बाहर निकलना है। आपने जैनधर्म के कठिन से कठिन बिन्दुओं को अत्यन्त सहज-सरल भाषा में समस्त साधर्मी जन ही नहीं जन-जन तक कठिन चिंतन को सरल कर काव्य रस में रसमग्न कर प्रत्येक व्यक्ति को जीवन के ङ्क्षतन को ध्यानातीत कर देता है।

आचार्यश्री कृति की कुछ पंक्तियां उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत करना

चाहूँगी-

तू प्रमाद में लेटा है, काल लुटेरा बैठा है,
तुझसे हर दम ऐंठा है-२
सहीम आयु मोर यहाँ, काल घटा का शोर यहाँ
अपनी ही मृत्यु हो हो तू जान न नपाए रे
जीवन है पानी की बूँद, कब मिट जाए रे
होनी-अनहोनी हो कब क्या घट जाए रे

प्रत्येक मानव दु:ख का दु:खडा रोता है और सुख की आकांक्षा करता है जब दु:ख के बीज बोये हैं तो सुख की प्राप्ति कैसे हो सकती है -

दु:ख का दुखड़ा रोते हैं, बीज दु:खों का बोते हैं
सुख का स्वप्न संजोते हैं-२
दु:ख से तो अनजाना है दु:ख को कब पहिचाना है
दु:ख को जाने बिन हो हो सुख कैसे पाये रे
जीवन है पानी की बूँद, कब मिट जाये रे
होनी अनहोनी हो हो कब क्या घट जाये रे

इस मानव शरीरी का उपयोग प्रतयेक व्यक्ति को कैसा लगाना है -

तन मिट्टी का खोल अरे, चेतन है अनमोल अरे।
भेदज्ञान से तौल अरे-२
अरस अगंध अरुपी है, चेतन ज्ञान स्वरूपी है
चेतन मिल जाये हो हो चिंता मिट जाये रे
जीवन है पानी बूँद, कब मिट जाये रे
होनी-अनहोनी हो हो कब घट जाये रे।

आज हम लोग देख रहे हैं प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे का दुश्मन बनता जा रहा है, कवि संत शिरोमणि श्रमणाचार्य भावलिंगी संत परम पूज्यनीय १०८ विमर्शसागरजी महाराज का चिंतन आप सभी के लिये दृष्टिगत करते हुये कृति में लिखा है -

करुणा रस छलकाओ तुम, दिल से दया बहाओ तुम

सबमें प्रीति जगाओ तुम-२
घृणा नहीं उपजाओ तुम, वात्सल्य प्रगटाओ तुम
दुनियाँ में दुश्मन हो हो, फिर नजर न आये रे
जीवन है पानी की बूँद कब मिट जाये रे
होनी अनहोनी हो हो कब क्या घट जाये रे

आचार्यश्री की काव्यकृति जीवन है पानी की बूँद काव्य में यह नर तन कैसे प्राप्त हुआ, इसका मार्मिक चित्रण इन पंक्तियों में दृष्टव्य है-

तू निगोद से आया है, दुर्लभ नरतन पाया है।
थावर त्रस पर्यायों में, भोगों को ललचाया है।
भोगों का कीड़ा हो हो कब बोधि पाये रे
जीवन है पानी की बूँद कब मिट जाये रे
होनी अनहोनी हो हो कब क्या घट जाये रे
चारों गति दुःखदाई है, खुशियाँ किसने पाई है।
देव, नारकी, पशु, मानुष, देह अनेकों पाई है।
देहों में रमकर हो हो देही दुःख पाये रे।
जीवन है पानी की बूँद कब मिट जाये रे
होनी अनहोनी हो हो कब क्या घट जाये रे
नरकगति अति दुःखदाई, भूमि, असुर दुःख दे भाई।
लड़ते और झगड़ते हैं, कुत्तों जैसे ही भाई।
तिल-तिल तन करते हो हो पर मौत न आये रे।
जीवन है पानी की बूँद कब मिट जाये रे
होनी अनहोनी हो हो कब क्या घट जाये रे
जो मनुष्यगति में आता, गर्भ जन्म के दुःख पाता।
बचपन खेलों में, यौवन तरुणी संग ही खो जाता।
संयम धारे तो हो हो मुक्ति भी पाये रे।
जीवन है पानी की बूँद कब मिट जाये रे
होनी अनहोनी हो हो कब क्या घट जाये रे

प्रत्येक जीव संसार में अकेला आता है, अकेला जाता है

आचार्यश्री राष्ट्रयोगी भावलिंगी विमर्शसागरजी ने अपनी कृति जीवन है पानी की बूँद काव्यकृति के इसका उल्लेख करते हुये लिखा है –

दुनियाँ एक झमेला है, राग-द्वेष का मेला है।
आया साथ न लाया कुछ, जाता जीव अकेला है।
मेरा-मेरा की हो हो रट क्यों लगाये रे।
जीवन है पानी की बूँद कब मिट जाये रे
होनी अनहोनी हो हो कब क्या घट जाये रे

आपकी काव्यकृति में दशधर्म का वर्ण बड़े सरल ढंग से छन्द के माध्यम से किया गया।

आचार्यश्री विमर्शसागर कृत 'जीवन है पानी की बूँद' में निहित पुण्य-पाप पदार्थों का विवेचन

- मा. पं. शिखचन्द्र जैन एवं
पं. चन्द्रप्रभात जैन बड़ामलहरा

मंगलं भगवान् वीरो, मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दाद्यौ, जैनधर्मोऽस्तु मंगलम्।।
गुरु विराग के प्रिय शिष्य हो, चरणों में शीश झुकता हूँ।
हे विमर्श! तव अनुपम कृति पर, शुभ भावों के पुण्य चढ़ाता हूँ।।

हे भव्य साधर्मी बन्धुओ! आज आचार्यश्री द्वारा रचित इस अनुपम काव्यकृति 'जीवन है पानी की बूँद' पर मनीषियों द्वारा विचारमंथन किया जा रहा है। वास्तव में यह अत्यन्त स्तुत्य प्रयास है, जिससे सभी अपनी-अपनी मेधानुसार ज्ञान-मोती प्राप्त करेंगे। इसी क्रम में कहना चाहूँगा कि जो विषय मुझे दिया गया है, वह तो कृति के शीर्षक मात्र से ही सम्पूर्णत: व्याख्यायित हो रहा है कि जिस प्रकार हथेली में आयुकर्मादि का बन्धन है और इसी में कुछ क्षणों के लिये कुछ बूँदें एकत्रित हो गयी है, जिन्हें हम पुण्य-पाप की बूँदों के रूप में समझ सकते हैं क्योंकि इनमें से थोड़ी-सी ही मनुष्य पर्याय में संपादित साधना की आँच से वाष्पित होकर ऊर्ध्वगमन करेगी अर्थात् पुण्यकर्मों से ही हमें देवगति प्राप्त होती है तथा शेष बची अधिकांश बूँदे स्वयमेव ही हथेली से अधोगमन करते हुये ढुलक जायेगी। ठीक वैसे ही हम भी पापकर्मों के वश अधोगमन करते हुये नानायोनियों को धारण करते फिरते हैं किन्तु सुख/ सच्चे सुख केा प्रापत नहीं कर पा रहे हैं। प्रश्न उठता है कि मन में फिर कैसे प्राप्त होगा हमें सच्चा सुख? उत्तर सदा एक ही रहेगा कि जान लो रहस्य इन बुमूल्य पंक्तियों का कि -

जीवन है पानी की बूँद कब मिट जाये रे।

स्वयं आचार्यश्री प्रस्तुत कृति में पृष्ठ क्रमांक ४९ पर कह रहे हैं-

पुण्य-पाप की बस्ती में घूम रहा तू मस्ती में।
केाई जग से पार हुआ, डूब रहा कोई कश्ती में।
अपना सुख-दुःख तू हो हो पहिचान पाये रे।
जीवन है पानी की बूँद कब मिट जाये रे।

अर्थात् यदि हमें सच्चा सुख प्राप्त करना है तो इस रंगमंच के समान क्षणिक जीवन में सुख-दुःख अथवा पुण्य-पाप पदार्थों को सही समझना होगा, तभी हम निराकुल मोक्षसुख को उपलब्ध हो सकते हैं। अतः सर्वप्रथम हम समझने का प्रयास करेंगे कि पाप क्या है? कैसा है? क्यों है? हेय/उपादेय इत्यादि दृष्टियों से क्रमशः ससंदर्भ गवेषणा की जानी चाहिये।

वस्तुतः इस अपरम्पार संसार में आबालवृद्ध सभी पाप को बुरा मानते हैं, इसलिये महर्षि वेदव्यास को कहना पड़ा-

अष्टादशपुराणेषु व्यासस्य वचनं द्वयम्।
परोपकाराय पुण्याय पापाय परपीडनम्।।

जैनदर्शनानुसार पाप अर्थात् जो पतित करे या जो आत्मा को शुभ से वंचित रखता है, वह पाप है। जैसा कि कहा गया है -

यद् पत्नाति तद् पापम्।

पुनश्च-

पाति रक्षति आत्मानं शुभात् इति पापम्।

सारांशतः पंचेन्द्रिय एवं मन के विषयों में आसक्ति का नाम पाप है। इसकेा ही संक्लेश, अशुभ, अमंगल या अहित इत्यादि कहा जाता है।

अब जब जीव मन-वचन-काय, कृत-कारित-अनुमोदना इनमें से किसी एक या अनेक के द्वारा पतन के कारणभूत कार्यों में अर्थात् जन्म-विषय-भोगों की अभिलाषा से लालन-पालन प्रमोद-विसंवाद

और योगों की वक्रता से आहार, भय, निद्रा, मैथुन, परिग्रह, कृष्ण लेश्या आदि अशुभ परिणामों में या संतति आर्त-रौद्र ध्यान में संलग्न होता है और उसके कारणों या साधनों की जो उपलब्धि होती है, वह पापकर्मों के उदय का ही फल है।

जिस प्रकार लोकव्यवहार में भी जीवों को लौकिक अहितकारी पदार्थों/साधनों का मिलना बुरा कहलाता है, अथवा पाप का उदय या फल कहा जाता है, ठीक उसी प्रकार धर्म के मार्ग में धर्म घातक बाह्य पदार्थों या साधनों का मिलना पाप का उदय फल ही है।

पुनश्च जैसे किंपाक फल देखने में सुंदर व रस में मधुर हो सकता है किन्तु वह अंतत: प्राणघातक ही है ठीक उसी तरह पापों के फल देखने में अच्छे व सेवन में भले प्रतीत हो सकते हैं किन्तु ये सभी आत्मघातक ही होते हैं। इसलिये परिभाषा में कहा गया है कि जो आत्मा का पतन करें अर्थात् आत्मस्वभाव से च्युत करे सो उन्हें पाप समझना चाहिये।

वस्तुत: पाप दो प्रकार से समझना चाहिये द्रव्य व भाव अपेक्षा से किन्तु लोकव्यवहार की भाषा में उन्हें स्थूलत: पाँच दायरों में रखा है जो सर्वविदित ही है -

हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह।

उपर्युक्त पंच पापों से बचने के लिये आचार्यश्री उमास्वामीजी ने सूत्रजी में सातवें अध्याय के प्रथम सूत्र में कहा है -

हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम्।

इनमें से द्रव्य व भाव हिंसा विषयक पंक्तियाँ समालोच्य कृति में दृष्टव्य है- सर्वप्रथम भावहिंसा के लिये -

राग-द्वेष भावों के कारण, भवसागर में डूब रहा है।
गंवा रहा भोगों में जीवन, मन फिर भी अब न ऊब रहा है।

पुनश्च पृष्ठ क्रमांक ८१ पर -

धर्म न सिखलाये लड़ना, धर्म सिखाता है बढ़ना
सबको हिल-मिलकर रहना-२

इसी प्रकार झूठ के संदर्भ में - पृष्ठ १५० पर

जो इन्सान होता झूठा भाग्य सदा उसका फूटा
खुद को उसने ही लूटा-२
झूठे मानव को हो हो यह जग ठुकराये रे।।

पुनश्च चोरी कुशील के संदर्भ में ये सुंदर पंक्तियाँ अत्यन्त दृष्टव्य है -

किया काम कब-कब चोखा, दिया यहाँ कब-कब धोखा
कर्म करे लेखा-जोखा-२
करनी का फल पायेगा, कर्म से न बच पायेगा
कर्मों के कारण हो हो, रावण राम दिखाये रे।।

पुनश्च परिग्रह छोड़ने व वैराग्योत्पादक ये पंक्तियाँ सचमुच सीधे स्वयमेव अंतर्प्रविष्ट हो जाती है-

रागद्वेष को छोड़ अरे, कच्चे बंधन तोड़ अरे,
भोगों से मुख मोड़ अरे-२
परिग्रह कब तक जोड़ेगा, देह चुनरिया ओढ़ेगा
जीने मरने का हो हो, क्यों खेल रचाये रे।।

इस प्रकार पाँच पापों का वर्णन के बाद मिथ्यात्व अर्थात् उल्टी मान्यता का समस्त पापों का मूल बताते हुये यह निष्कर्ष प्रतिपादित किया गया है -

कोई पुण्य कमाता है कोई पाप कमाता है
धर्म कोई कर पाता है-२
पाप सदा दुःखदाई, पुण्य क्षणिक सुखदाई है
सद्धर्म शिवसुख हो हो की राह दिखाये रे।।

पुण्य क्षणिक सुखदाई.. पाप वर्णनोपरान्त जो पुण्य कथंचित् उपादेय है, उसे भलीभाँति समझ लेना आवश्यक है क्योंकि आचार्य कुंदकुंद स्वामी ने प्रवचनसारजी में कहा है -

पुण्यफला अरहंता.. अर्थात् अरहंत भगवान पुण्यरूपी कल्पवृक्ष के फल है। अतः पुण्य का स्वरूप समझने के लिये सर्वार्थसिद्धि महाग्रन्थ

का यह सूत्रवाक्य कि

पुनात्यात्मानं पूयतेऽनेनेति वा पुण्यम्।

यहाँ पुनाति अर्थात् पवित्र/पुनीत/शुचि/मांगलिक इष्ट इत्यादि अनेक अर्थों में प्रयुक्त होता है किन्तु जो आत्मा को पवित्र बनाता है वही पुण्य कहलाता है। जीव के व्रत, शील, संयम, देवपूजन, समता, वंदना आदि के परिणाम पवित्र कहलाते हैं। व्यवहार दृष्टि से पुण्य आत्मा का उपकारी कहा जाता है, क्योंकि पुण्य की भूमिका में ही आत्मोत्थान संभव हो पाता है। इसलिये कहा गया है कि –

धर्म करत संसार सुख धर्म करत निर्माण।
धर्म पंथ साधे बिना नर तिर्यंच समान।।

अतः संसाररूपी नदी में अशुभ पापरूपी तट से दूर शुद्धोपयोग तट पर पहुँचना है तो शुभ पुण्यरूपी नाव की सवारी करनी ही पड़ेगी। इन्हीं भावों को प्रस्तुत कृति में इस तरह प्रस्तुत किया गया है –

जग में पुण्य कमाओगे हलुआ पूडी खाओगे
भूखे न मर पाओगे-२
खूब प्रतिष्ठा पाओगे यश भी खूब कमाओगे
सम्यक् श्रद्धा बिन हो हो कुछ न मिल पाये रे।।

ये महिमा है पुण्य की जिससे क्रमशः सब कुछ प्राप्त होता है किन्तु सम्यक् श्रद्धान होने पर। क्योंकि यही पुण्य प्रशस्त और अप्रशस्त के भेद से दो भागों में विभक्त हो जाता है। प्रशस्त पुण्य अर्थात् जो हमारा उत्कर्ष का मार्ग प्रशस्त करे अर्थात् क्रमशः मोक्षमार्ग पर गतिशील बनाये रखे। वहीं दूसरा अप्रशसत पुण्य वस्तुतः पापानुबन्धी पुण्य होता है अर्थात् पुण्योदय से सुभौम चक्रवर्ती के समान उच्च पद तो प्रापत हो जाता है किन्तु नरकादि रूप अधोगमन का कारण बनता है अतः विवेच्य कृति में प्रशस्त पुण्य को ही श्रेष्ठ बताया गया है।

इसी पुण्य पदार्थ को भाव व द्रव्य अपेक्षा भी दो प्रकार का माना जाता है। इनमें भावपुण्य अर्थात् जिस परिणाम से आत्मा पवित्रता की ओर अग्रसर होता है एवं द्रव्य पुण्य अर्थात् भावपुण्य के निमित्त से शुभ

प्रकृतिरूप पुद्गल परमाणुओं का पिण्ड द्रव्य है। निश्चयदृष्टि से स्वभावोन्मुखी परिणाम निश्चय पुण्य है। व्यवहारदृष्टि से विषयवासना रहित व्रतादिरूप भाव व्यवहार पुण्य है। इन्हीं भावों से ओत-प्रोत पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं -

पुण्य उदय में चाह न कर, पापोदय में आह न कर।
समता रस का पान करो, पानी है यदि मोक्ष डगर।।
इच्छायें तुझको हो हो हर पल नाच नचाये रे
जीवन है पानी की बूँद.....

वस्तुतः पुण्य-पाप को शुभाशुभ रूप से दृष्टिगत करते हुये अष्टकर्मों में भी भेद देखा जा सकता है-

सदसद्वेद्ये अर्थात् साता व असाता वेदनीय। तत्त्वार्थसूत्र ८/८
सद्वेद्यशुभायुर्नामगोत्राणि पुण्यम्। अतोऽन्त्यपापम्।। तत्त्वार्थसूत्र ८/२५-२६

अर्थात् साता वेदनीय, शुभ आयु, शुभ नाम, शुभ गोत्र ये पुण्य प्रकृतियाँ हैं। इनसे अन्य पाप प्रकृतियाँ है।

इस प्रकार देखे तो कथंचित पुण्य पापापेक्षया श्रेष्ठ है किन्तु शुद्ध परिणति तो पाप पुण्यातीत ही होती है, तथा वही पमरसुख उपलब्ध कराने में परम कारणभूत है, उसी को आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने उत्तम सुख कहा है -

देशयामि समीचीनं धर्मं कर्मनिवर्हणम्।
संसारदुःखतः सत्त्वान् यो धरत्युत्तमे सुखे।। र.क.श्रा./१/२

पुनश्च बारखाणुपेक्खा में -

सुहजोगस्स पवित्ती संवरणं कुणदि असुहजोगस्स।
सुहजोगस्स णिरोहो सुद्धवजोगेण संभवदि।।

अर्थात् शुभयोग की प्रवृत्ति अशुभयोग का निरोध करती है और शुभयोग का निरोध शुद्धोपयोग से होता है।

अतः अन्त में निष्कर्षतः पाप सर्वथा हेय, पुण्य कथंचित उपादेय और शुद्ध भाव सर्वथा उपादेय है। इन भावों को समाहित किये हुये इन

पंक्तियों से उपसंहार करना उचित होगा–

सम्यक् पुण्य कमाना है मोक्षमार्ग अपनाना है।
जो दुर्गति का कारण है अब वह पाप मिटाना है।।
सम्यक् चर्या ही हो हो, सबको सजग बनाये रे
जीवन है पानी की बूँद ....

पुनश्च– अन्त में,

शुद्ध आत्मा को जानो, शुद्ध आत्मा को पहिचानो।
शुद्धातम के आश्रय से आठों कर्मों को हानो।।
कर्मों को नशकर हो हो सिद्धालय पाये रे
जीवन है पानी की बूँद...

आचार्यश्री विमर्शसागरजी महाराज का हिन्दी काव्य परम्परा में अवदान 'जीवन है पानी की बूँद' के सन्दर्भ में
– डॉ. आशीष जैन आचार्य, शाहगढ़

आचार्यश्री विमर्शसागरजी महाराज द्वारा रचित में अवदान 'जीवन है पानी की बूँद' में प्रतिपादित मानव के कर्त्तव्य
– पं. राजेश जैन शास्त्री, ललितपुर

'जीवन है पानी की बूँद' के सन्दर्भ में अहिंसा धर्म की प्रासंगिकता
– पं. मुकेश जैन शास्त्री, ललितपुर

आदर्श जीवन का पथ
– पं. मनोज जैन शास्त्री, नरसिंहगढ़

आचार्यश्री विमर्शसागरजी एवं उनकी साहित्य साधना
– आशीष जैन शास्त्री, बम्हौरी

आचार्यश्री विमर्शसागर कृत 'जीवन है पानी की बूँद' में नैतिक शिक्षा
– सुनील सुधाकर शास्त्री द्रोणगिरि

आचार्यश्री विमर्शसागर कृत 'जीवन है पानी की बूँद' में अध्यात्म चिंतन की उपादेयता
– श्रीमती मालती जैन बडामलहरा

आचार्यश्री विमर्शसागर कृत 'जीवन है पानी की बूँद' में निहित पुण्य-पाप पदार्थों का विवेचन
– मा. पं. शिखचन्द्र जैन एवं
पं. चन्द्रप्रभात जैन बड़ामलहरा